गुणों की खान तुलसी

•

—रामेश बेदी

१९८६



सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
एन-७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-११०००१

•

पहली बार : १९८६
मूल्य : रु० १०.००

•

मुद्रक
शुक्ला प्रिंटिंग सर्विस,
मौजपुर, दिल्ली-५३

प्रकाशकीय

वनस्पति-सम्पदा की दृष्टि से हमारा देश अत्यन्त समृद्ध है। उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक नाना प्रकार के वृक्ष और लताएं न केवल देश की सीमा में चार चांद लगाते हैं, उसकी भूमि को शस्य-श्यामला बनाते हैं, अपितु देशवासियों को जीवन-दायिनी जलवायु भी प्रदान करते हैं। हमारा पुरातन साहित्य तो वनस्पति की महिमा और गुणों की गाथा से भरा पड़ा है।

भारतीय जीवन की एक विशेषता रही है और वह यह कि जो भी वस्तु उसके लिए उपयोगी होती है, उसे वह धर्म के साथ जोड़कर मान-सम्मान प्रदान करता है।

हमारी इस वनस्पति-सम्पदा को पाठक भली प्रकार समझें, इस उद्देश्य से हमने इस पुस्तक-माला को आरंभ किया है। इसके लेखक श्री रामेश बेदी से हिन्दी-जगत भली प्रकार परिचित है। उन्होंने वनस्पतियों तथा वन्य-प्राणियों के विषय में बड़े मूल्यवान साहित्य की रचना की है। इस समय चार पुस्तकें पाठकों को प्राप्त हो गई हैं :

१. पूजा के पेड़-पौधे, २. हमारी पुष्प-श्री, ३. हमारे पोषक फल, ४. गुणों की खान तुलसी।

पहली पुस्तक में उन पेड़-पौधों का परिचय दिया गया है, जिनके साथ पूजा की भावना संलग्न है। दूसरी पुस्तक में उन चुने हुए पुष्पों की जानकारी दी गई है, जिन्हें हम प्रायः देखते हैं, किन्तु जिनके विषय में हमारा ज्ञान बहुत ही सीमित है। तीसरी में उन फलों का वर्णन किया गया है, जो हमारे स्वास्थ्य का सम्वर्द्धन करते हैं और चौथी पुस्तक में तुलसी के धार्मिक रूप तथा गुणों पर विशद प्रकाश डाला गया है।

पुस्तकों की सामग्री प्रामाणिक है। उनसे जहां ज्ञान-वर्द्धन होता है, वहां यह भी पता चलता है कि हमारे पास कितनी मूल्यवान निधि है। और यदि हम उसकी उपादेयता को भली प्रकार समझकर उसका सरक्षण और अपने जीवन में ठीक-ठीक उपयोग करें तो हमें कितना लाभ हो सकता है।

हमें पूरा विश्वास है कि पाठक इन सब पुस्तकों को स्वयं तो पढ़ेंगे ही, और भी बहुत-से हाथों में पहुंचाने में सहायक होंगे।

—मंत्री

अनुक्रम





इस माला की पुस्तकें

१. पूजा के पेड़-पौधे — १५.००

धर्म-साधना से युक्त पेड़-पौधे और उनकी उपयोगिता

२. हमारी पुष्पश्री — १० ००

कुछ लोकप्रिय पुष्पों का ज्ञानवर्धक परिचय

३. हमारे पोषक फल — १५.००

हमारे शरीर को पुष्ट करनेवाले फलों की जानकारी

४. गुणों की खान तुलसी — १०.००

तुलसी के पुरातन महत्त्व और गुणों पर प्रकाश

गुणों की खान
तुलसी
•


गुणकारी
तुलसी

१/ तुलसी की उपादेयता

हिन्दू स्त्रियां और भक्त लोग तुलसी को सदा घरों में रोपते हैं। जब घर बन रहे होते हैं, तो उनमें तुलसी के लिए अलग स्थान रख लिया जाता है। बड़े घरों में तो एक बड़े चबूतरे में इसे लगाते हैं। इस स्थान को 'तुलसी वृन्दावन' कहते है। भक्तजन नियम से इन पौधों को सींचते हैं। वे हमेशा इस बात का ध्यान रखते हैं कि इनकी बाढ़ तो ठीक हो रही है।

इस तरह सेवा करने से घरों में पौधे खूब पनप जाते हैं और इनकी जड़ें ज़मीन में फैलती चली जाती हैं। जबतक पौधे लगे रहते है, घर के लोग उनका उपयोग करते हैं। यह उनको सदा नीरोग रखती है। उनके घर मे से बहुत पुरानी बीमारियां भी निकल जाती हैं। भगवान् की कृपा से वहां सदा सुख रहता है।

तुलसी बोने का प्रचार बढ़े तथा उचित देख-रेख में पौधे खूब फूलें-फलें और घर वालों को स्वस्थ रखें—इस दृष्टि से इसको व्यवस्थित रूप से उगाना भी धर्म का अङ्ग बना दिया गया, जिससे कर्तव्य समझकर इसे हर घर में अवश्य बोया जाया करे। अच्छा फल मिलने की आशा से मनुष्य को कार्य करने में उत्साह होता है। इसलिए ब्राह्मणों ने धर्मग्रंथों में लिखा :

"तुलसी की जड़ों में उग आने वाले घास-पात को निलाई करके चुनने वाले से हो गई ब्रह्महत्या को भी विष्णु भगवान् क्षमा कर देते हैं। गरमियों में ठण्डे, सुगन्धित पानी से तुलसी को सींचने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है। विशेषतः गरमियों में

तुलसी को छाया में ठण्डी जगह पर रखकर बचाने वाला सब पापों से छूट जाता है। वैशाख में तुलसी को रोज सींचने वाला अश्वमेध के फल को पाता है, और जो मनुष्य कभी-कभी दूध से भी तुलसी को सींच देता है, उसके घर में लक्ष्मी स्थिर होकर वास करती है। तुलसी के नीचे गोबर का लेप करने वाला और झाड़ू से बुहार कर रोज सफाई करने वाला सदा प्रसन्न रहता हुआ ब्रह्मा के साथ रहता है।"

इस विवरण को पढ़कर पाठक धर्माचार्यों की सद्भावनाओं का ठीक तरह अनुमान कर सकते हैं।

नाम—लोक में इस पौधे का सबसे अधिक प्रचलित नाम तुलसी है। यह नाम बहुत पुराना नहीं। चरक, सुश्रुत, काश्यप संहिता आदि संहिताओं में हम इस नाम को नहीं देखते। अष्टाङ्ग हृदय में तुलसी शब्द नहीं आया। प्राचीन समय में इसे सुरस और अपेत राक्षसी कहा जाता था। चरक और काश्यप संहिता में प्रायः अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द सुरस का प्रयोग हुआ है और सुश्रुत संहिता में आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द सुरसा का। सुश्रुत का टीकाकार डल्लण सुरसा का अर्थ 'तुलसी इति लोके' लिखता है। इसका मतलब है कि डल्लण के समय (१०६०-१२६० के बीच) इस पौधे को लोक में तो अवश्य तुलसी कहने लग गये थे। संस्कृत साहित्य में इस नाम का उल्लेख हमें पहले-पहल मध्यकाल में लिखे गये पुराणों में मिलता है। इन पुराणों का रचनाकाल सातवीं शताब्दी है। फिर बाद के बने जड़ी-बूटियों के ग्रन्थों में इस नाम का समावेश कर लिया गया। पुराणों में इसका अति प्रसिद्ध एक नाम वृन्दा है। आयुर्वेद के चिकित्सा-ग्रन्थों में और जड़ी-बूटी के निघण्टुओं में भी यह नाम कहीं नहीं आया। चरक, सुश्रुत के सुरस और अपेत-राक्षसी नाम पौराणिक साहित्य में नहीं उपलब्ध होते।

उत्पातबाधक नाम—ग्राम्या, सुलभा (गांवों में भी सब जगह सुगमता से मिल जाती है)।

परिचय ज्ञापक संज्ञा—रम्या (रमणीय); सुरभि, सुगन्धा (सुगन्धित पौदा); सुरस, सुरसा (पत्ते रसमय होते हैं अथवा सुगंधित रस वाला); बहु पत्री (बहुत पत्तों वाला); स्वादु गंधच्छदा (जिसके पत्तों से प्रिय गन्ध आती है); वृंदा (जिस पर फूल समूहों—वृंद—में लगते हैं; अथवा एक पौराणिक गाथा के अनुसार विष्णु भगवान् से अभिशप्त वृन्दा नाम की एक सती स्त्री विष्णु पर पूजार्थ चढ़ाई जाने के लिए भूलोक में तुलसी पौधे से रूप में बन गई); मंजरी(मंजरियों वाला पौधा); सुमंजरी (मंजरियां सुन्दर लगती हैं); बहु मंजरी (बहुत मंजरियों वाला); त्रिदश मंजरी (मंजरियों वाला यह पौधा देवों-त्रिदश—को प्यारा है); भूतेष्टा, भूत प्रिया (सब प्राणियों को प्यारा है); सुरेज्या (देवताओं से पूजा जाने वाला अथवा देवों पर पूजा में चढ़ाया जाने वाला); वैष्णवी (फैल जाने वाला, बीज से इसका विस्तार आसानी से सब जगह हो जाता है; अथवा विष्णु पर पूजार्थ चढ़ाया जाने वाला, अथवा वैष्णवों का प्रिय पौधा); विष्णु वल्लभा, विष्णुप्रिया, हरिप्रिया (विष्णु देव का प्रिय); कृष्ण प्रिया (श्रीकृष्ण का प्रिय पौधा); तुलसी (पौराणिक गाथा की एक पतिव्रता स्त्री, जिसके सौन्दर्य की तुलना न हो सकने से उसका नाम तुलसी पड़ा और बाद में नारायण के वर से वह शालिग्राम की पूजा के लिए तुलसी पौधे के रूप में पैदा हो गई)।

गुण-प्रकाशक नाम—सुरसा (जो मुख में खूब लाला-रस ला दे); भूतघ्नी, दैत्यघ्नी, अपेत राक्षसी (राक्षस रूप रोग-कृमियों को भगा देने वाला); पापघ्नी (रोग रूप पाप का नाशक); तुलसी (रोगादियों का संहार करने में जिसकी तुलना में और कोई न

हो, तुलां सादृश्यं स्यति नाशयति, अथवा इस पौधे के प्रभाव से मृतप्राय व्यक्ति—तु—भी दीप्ति को लसति—प्राप्त—करता है); पूत पत्री (पत्तों का प्रयोग शरीर को पवित्र करता है); पावनी (सारे पौधे में ही पवित्र करने का गुण है, इसलिए); सुभगा (यह कल्याणकारी पौधा है); कायस्था (शरीर को स्थिर करता है); तीव्रा (तेज़ी से गुण करने वाले); सरला (चिकित्सा में सरलता से उपयोग किये जाने वाले); सुर-दुंदुभि देव-दुंदुभि (इस पौधे में देव—श्रेष्ठ गुण—बसते हैं, यह देवों—गुणों का नगाड़ा है)।

दूसरी भाषाओं के नाम

हिन्दी	तुलसी, वृन्दा, विन्दरावनी, सफ़ेद तुलसी, काली तुलसी।
मराठी	तुलसा, तुलसी चे झाड़।
तामिल	तुलशी, अलंगाई।
तेलुगु	गग्गेरा, गग्गेर चेट्टु, वृन्दा, इयुलसी, कृष्णं तुलसी, कुक्क तुलसी, तुलसी चेट्टु, नल्ला तुलसी, नल्ला गगरा।
कर्णाटकी	एरेड तुलसी।
सिंहाली	मडरुटला, मुडुरुटुल्ला।
बर्मी	लुन।
पुर्तगाली	मगेरिकाओ।
फ़िलिपीनी	अल्वहक।
फ़ारसी	रहां, रेहान्।
अरबी	तुलसी बदरुत, शाहशफरम।
अंग्रेज़ी	होली बेसिल, सेक्रेड बेसिल, मौन्क्स बेसिल, रफ़ बेसिल।

फ्रेंच   बेसिलिक सेण्ट।
लैटिन   ओसिमुम सान्क्टम लिन.।

नयी तथा पुरानी फ्रेंच और ग्रीक भाषाओं में बेसिल को शाही अथवा राजा के सदृश कहते हैं। इसलिए तुलसी के अंग्रेजी और फ्रेंच नामों का अर्थ हुआ—पवित्र शाही पौधा, या पुरोहित का शाही पौधा अथवा सन्तजनों का शाही पौधा। लैटिन नाम भी पवित्रतासूचक है। इन नामों के अनुसार, यूरोप में भी यह पौधा उसी तरह पूज्य और सम्मानित रहा है जैसे भारत में।

पंजाबी आदि बहुत-सी प्रान्तीय भाषाओं में तुलसी के नामों में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। अनावश्यक विस्तार हो जाने के भय से उन नामों को यहां नहीं दिया गया।

भेद—सफ़ेद और काली दो क़िस्में देखी जाती हैं। दोनों में मुख्य अन्तर पत्तों और शाखाओं के रंग का है। क़ाली किस्म में इनका रंग ज़रा काला-सा होता है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में भी ये दो भेद लिखे हैं, और दोनों का एक ही सांझे नाम के अन्दर वर्णन किया गया है। काली क़िस्म के लिए एक अलग नाम श्यामा है और सफेद के लिए गौरी। शेप नाम दोनों के लिए एक समान ही प्रयुक्त हुए हैं। दूसरी भाषाओं के जो नाम पहले दिये गए हैं, उनमें दोनों भेदों के नाम आ गये हैं।

चरक ने सामान्यतया सुरस नाम से दोनों भेदों का ग्रहण किया है। परन्तु कुछ नुस्खों में वह स्पष्टतया सफ़ेद और कुछ में काली किस्म लेने के लिए निर्देश देता है। सफ़ेद तुलसी को उसने शुक्ल सुरस नाम दिया है। इसलिए यह मानना चाहिए कि चरक इसके काले और सफेद भेदों को अलग-अलग जानते थे। सुश्रुत ने भी ये दो भेद दिखाये है।

कैयदेव (१४५० ईस्वी के लगभग) ने तुलसी के ये तीन भेद लिखे हैं—काली तुलसी, सफ़ेद तुलसी और कर्पूर तुलसी। इस लेखक ने सफ़ेद भेद के निम्नलिखित नाम अलग गिनाये हैं—गौरी, श्वेता (सफ़ेद रंग वाली); राजसी (रजोगुण वाली अथवा राजाओं में सम्मानित); श्रीमञ्जरी (सुन्दर कल्याणकारी मञ्जरियों वाली); सुरभि मञ्जरी (मञ्जरियों में सुगन्ध होती है); भूरि मञ्जरी (पौधे पर बहुत सारी मञ्जरियां निकलती हैं); शक्र पत्नी (इन्द्र की पत्नी)।

कपूर तुलसी की बेल होती है, पौधा नहीं। अनुमान होता है कि यह एक पृथक् जाति है जिसमें से कपूर की-सी गन्ध आती है। भूत वेश्या इसका एक पर्याय है। कैयदेव ने तीनों के गुणों में भेद नहीं दिखाया।

सदाशिव बताते हैं कि तुलसी की सफ़ेद और काली क़िस्मों को भिन्न-भिन्न समझना ठीक नहीं। भावमिश्र की सम्मति में दोनों के गुणों में कोई अन्तर नहीं और दोनों किस्में एक समान ही गुणवती हैं।

मेरा अनुभव इन विद्वानों से जरा भिन्न है। काली तुलसी में अधिक सुगन्ध होती है और यह अधिक तेज़ होती है। मेरी सम्मति में यह औषध प्रयोग में सफ़ेद की अपेक्षा अधिक गुणकारी है।

भारतीय घरों में अधिकतर सफेद तुलसी लगाई जाती है। मेरी राय में काली क़िस्म को रोपने का प्रचार बढ़ना चाहिए। तीव्रता के कारण इससे मच्छर अपेक्षाकृत अधिक दूर रहेंगे। रोग रोधक और रोग निवारक दोनों चिकित्साओं में हमारा काली को ही चुनने में झुकाव होना चाहिए। हां, जहां पर तुलना में कम तीव्र पदार्थ की आवश्यकता हो वहां सफेद तुलसी बरती जानी चाहिए।

जातियां—वनस्पति-शास्त्र के विद्वानों ने लामिआसी कुल

के तुलसी(ओसिमुम)गण में साठ जातियों के पौधों को ढूढ निकाला है। ये जातियां भारत, अफ्रीका, अरब और ब्राजील आदि गरम प्रदेशों में मिलती हैं। पुनर्वसु आत्रेय ने अपने ग्रन्थ में नौ जातियों के चिकित्सा में उपयोग लिखे हैं। इनके नाम ये हैं—सुमुख, सुरस, कुठेरक, अर्जक, गण्डीर, कालमालक, पर्णास, क्षवक और फणिज्झक।

तुलसी गण में तीव्र सुगन्ध वाले क्षुप या छोटी झाड़ियों के सदृश पौधे होते हैं। इनमें पत्ते सादे, एक दूसरे के सामने और ग्रन्थियों से युक्त होते हैं। फूल छोटे और चक्र में लगते हैं। एक चक्र में छह से दस तक फूल हो सकते हैं। एक लम्बी सीख पर बहुत से चक्र लगकर वह रचना बनाते हैं जिसे मञ्जरी कहते हैं।

इस गण की जातियां उत्तेजक, दीपक, आमवाताहर, स्वेदजनक और ज्वरनाशक हैं। भूमण्डल पर निम्नलिखित जातियां औषध प्रयोग में इस्तेमाल होती हैं—

यूरोप में (बर्बरी ओसिमुम बेसिलिकुम लिन.) और रामतुलसी (ओसिमुम ग्रेटिसिमुम लिन)।
चीन और हिन्दचीन में बर्बरी।
जापान और मलाया में ओसिमम क्रिस्पम थम्ब।
फ़िलिपीनी द्वीपों में तुलसी, बर्बरी और रामतुलसी।
गायना में ओसिमम माइक्रेन्थम विल्ड।
ब्राज़ील में रामतुलसी, अर्जक (ओसिमुम केनुम सिम्स) और ओसिमम माइक्रेन्थम।
ला री यूनियन में बर्बरी और रामतुलसी।
इथोपिया [illegible]
गिनी और [illegible]
विरडे।वल्ड।

स्थिति के कारण यह सुगंध होती है। इस तेल के अधिक भाग को पौधा छोटे-छोटे खानों में इकट्ठा करके रख लेता है। पौधे की तेज बाढ़ के समय, जब उसे भोजन की अधिक जरूरत होती है, यह काम आता है। ऐसा प्रायः तब होता है, जब पौधे में बीज लगते हैं और प्रत्येक बीज को अधिक पोषक भोजन की आवश्यकता होती है। फूलने और फलने के समय देखा जा सकता है कि पौधे में गन्ध अपेक्षाकृत कम हो जाती है।

छाया में उगने वाले पौधों की अपेक्षा खुले स्थानों में उगने वाले पौधों में यह उड़नशील तेल बहुत कम होता है। छाया पौधों को पत्तों की वृद्धि करने के लिए प्रेरित करती है। ऐसी अवस्था में खाद्य-पदार्थ की भी अधिक जरूरत होती है, जिससे भविष्य के लिए यह अधिक जमा नहीं हो सकता। इसलिए ऐसे पौधे खुले स्थानों के पौधे की अपेक्षा जल्दी नहीं फूलते।

ग्रंथियुक्त रोओं के अतिरिक्त पौधे का सम्पूर्ण पृष्ठ ऊन जैसे मुलायम, सूक्ष्म, सफ़ेद, भूरे से रंग के रोओं से ढका रहता है। खुली वायु के सम्पर्क में आए पत्तों के पृष्ठ से होने वाले वाष्पीभवन को रोओं की यह स्तर कम करती है।

रासायनिक संघटन—तुलसी के पत्तों में पीले से हरे रंग का एक उड़नशील तेल होता है। कुछ समय तक रखा रहने से यह स्फटिकाकार हो जाता है। तब इसे तुलसीकपूर (बेसिकेम्फ़र) कहते हैं। उड़नशील तेल में एक तारपीन होता है।

उपयोगी भाग—तुलसी के पत्ते, मूल, फूल और बीज, प्रायः पौधे का प्रत्येक भाग चिकित्सा के काम आता है। हरा पौधा न मिल सकता हो तो उसे काटकर छाया में सुखाकर रख लेते हैं। इसे कषाय, वटी, तेल आदि विविध योगों में अकेला या अन्य द्रव्यों के साथ उपयोग करते हैं।

धर्म-कर्म में पत्ते, मञ्जरियां और पौधे की जड़ की मिट्टी

काम आती है। वृन्दावन में एक प्रकार की चिकनी मिट्टी होती है जिसे घिसकर चन्दन की तरह लेप किया जाता है। जब यह मिट्टी (गोपी चन्दन) न मिलती हो, तो तुलसी की जड़ की मिट्टी का लेप करते हैं। इससे भी वैसा ही लाभ कहा जाता है।

संग्रह—अच्छी तरह सुखाये गए पौधे को बन्द कनस्तर में सूखे स्थान पर रखना चाहिए। नमी और कीड़ों से बचाने के लिए कभी-कभी निरीक्षण करते रहना चाहिए। आवश्यक हो तो एक धूप दिखा सकते हैं।

पहले यह विश्वास रहा है कि तुलसी के तीन साल पुराने सूखे पत्ते भी क्यों न हों, विष्णु पर चढ़ाए हुए पानी में धोने से शुद्ध हो जाते हैं और श्राद्ध, व्रत, दान तथा पूजा में बरते जा सकते हैं।

हमारी सम्मति में यह अशक्योपदेश है और इसका अभिप्राय यह है कि जब ताजे और अच्छे पत्ते मिलने सम्भव न हों, तो पूजा में सूखे पत्तों से भी काम चलाया जा सकता है।

औषध प्रयोग में पुराने पत्तों को नहीं लेना चाहिए, क्योंकि वे निर्वीर्य हो जाते हैं।

२/ ऐतिहासिक विवेचन

ग्रीस के गिरजों में तुलसी पवित्र मानी जाती है। मेडिटरे-नियन के तटवर्ती प्रदेशों में यह सामान्य रूप से स्वास्थ्य प्रदान करने वाला पौधा समझा जाता है। हॉब्सन जॉब्सन (लन्दन, १६०३, पृष्ठ ६३१) में यूल और बुर्नेल का तुलसी पर एक लेख है। इस लेख में जी० टी० बेण्ट की पुस्तक 'दि साइक्लेड्स' (१८८५, पृष्ठ ३२८) से एक उद्धरण दिया गया है। कहा जाता है कि यह ईसा की कब्र पर उग आई थी और इसलिए पूर्वीय गिरजों में प्रायः यह पूजी जाती है। तुलसी उत्सव (सेण्ट बेसिल्स डे) के दिन महिलाएं इस पौधे की शाखाएं लेकर आशीर्वाद लेने के लिए गिरजे में जाती हैं। घर लौटने पर उसमें से कुछ को वे घर के फ़र्श पर एक ओर रख देती है, जिससे आने वाला साल उनके लिए भाग्यशाली हो। घर में रहने वाले सब लोग जरा-सी तुलसी खाते हैं और बाकी को वे अलमारियों में रख देते हैं, इस विश्वास से कि उनके कपड़े-लत्ते करीब एक साल तक चूहों, चुहियों और झींगुरों आदि से बचे रहेंगे।

तुलसी के बारे में यह उद्धरण हमें बताता है कि ग्रीस में तुलसी अपने रहस्यमय गुणों के लिए प्रशंसित है। इस विवरण से प्रतीत होता है कि भारत के बाहर यह पौधा लगभग दो हज़ार साल से पवित्र और उपयोगी समझा जाता रहा है, परन्तु भारत में तुलसी-पूजा का प्रारम्भ हम इतना प्राचीन नहीं खोज

पाते। दवा के रूप में यह भारत में प्रायः ३०० ईसवी पूर्व से इस्तेमाल हो रहा है।

वेदों, आरण्यकों तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों में तुलसी का उल्लेख नहीं मिलता और न ही सर्वमान्य प्राचीन बारह उपनिषदों में ही किसी में। शंख लिखित धर्मशास्त्र में एक जगह तुलसी-पत्र खाने का उपदेश मिलता है। यह धर्मशास्त्र अबतक मूल रूप में नही मिला। इधर-उधर बिखरे हुए अंशों को संग्रह करके भण्डारकर इंस्टिट्यूट ने इसे छपवाया है। इसकी प्राचीनता प्रामाणिक मानी जाय तो स्वीकार करना पड़ेगा कि बहुत देर से तुलसी व्यवहार में आ चुकी थी। शंख लिखित तुलसी दल खाने के साथ-साथ चक्र आदि के चिन्ह धारण करना भी लिखा है। ये सब वैष्णव-सम्प्रदाय की बातें हैं जिनका उद्भव हम बहुत प्राचीन नही खोज पाते। धर्मशास्त्र का काल तो प्राचीन है परन्तु मूल रूप में न मिल सकने से संकलित करके छपाये गए धर्मशास्त्र की प्रामाणिकता में संदेह पैदा होता है।

अथर्ववेदीय परिशिष्ट में काली राई के प्रकरण में एक स्थल पर तुलसीभू शब्द आया है। पाणिनि के सूत्रों में तुलसी या इसका पर्यायवाची कोई शब्द नही। गण-पाठों में भी तुलसी शब्द तो नहीं, परन्तु सुरस शब्द आया है। इसका अर्थ तुलसी किया जाय तो इस समय यह पौधा उपयोग में रहा होगा।

समस्त वैदिक वाङ्मय तुलसी के सम्बन्ध में मौन है। चिकित्सा-शास्त्र की प्रारम्भिक संहिताओं में इस पौधे को तुलसी से भिन्न नामों के अन्दर पहले-पहले वर्णन किया गया। पुराणों में, और त्रिपादविभूति महानारायणोपनिषद्, सामरहस्योपनिषद् रामरहस्योपनिषद् आदि वैष्णव उपनिषदों में तुलसी नाम से इस पौधे की स्तुति की गई। तुलस्युपनिषद् नाम का एक छोटा-सा उपनिषद् ही अलग मिलता है जिसमें इस पौधे की महिमा,

तोड़ने की रीति, पानी देना और पूजा-पाठ में इसे बरतने के बारे में निर्देश दिये गए हैं। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए और रोगों को नष्ट करने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है, इस बात की ओर भी तुलस्युपनिषद् कुछ संकेत देती है।

'तुलसी माहात्म्य' नामक एक हस्तलिखित पुस्तक मैंने सन् १९४६ में डी०ए०वी० कालेज, लाहौर के ग्रन्थ-संग्रह में देखी थी। दस पन्नों की इस पुस्तक में १०३ श्लोक थे। पुराणों आदि में तुलसी का जो माहात्म्य कहा गया है, उसका यह संग्रहमात्र है। मैंने उसमें कुछ नया विषय नहीं पाया।

पुराने धार्मिक साहित्य में और आयुर्वेदिक शास्त्रों में तुलसी का उतना महत्व नहीं जितना साधारण जनता आजकल इसे दे रही है। वैद्यों में तो आजकल भी इसका विशेष उपयोग किया जाता हुआ नहीं दिखाई देता। बहुत कम ऐसे वैद्य मिलेंगे जिनके औषधालय में ऐसी कोई दवा होगी जो मुख्यतया तुलसी से बनाई जाती हो। किसी भी धर्मार्थ औषधालय में मुख्यतया तुलसी से बनी एक भी औषध नहीं मिलेगी। देश की बड़ी-बड़ी फार्मेसियों में 'देशी चाय' के अतिरिक्त और कोई दवा नहीं जिसमें तुलसी प्रधान घटक हो। धातुओं की भस्म बनाने में और विभिन्न प्रकार की वटी या रसवटियों में भी इसके पत्तों के रस से बहुत कम भावनाएं दी जाती हैं।

चरक और सुश्रुत ने जिन सात-आठ सौ वनस्पतियों के उपयोग लिखे हैं, उनमें एक यह भी है। दूसरी वनस्पतियों की तुलना में जब हम इस पर विचार करते हैं तो मालूम होता है कि ऐसे पौधों की संख्या बहुत काफ़ी है जिन्हें भारत के आदि चिकित्सकों ने तुलसी की अपेक्षा कहीं अधिक उपयोगी पाया था। जिन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में वनस्पतियों के कल्प लिखे मिलते हैं

उनमें किसी ग्रन्थ में इसका कल्प (विस्तृत विवेचन) नहीं मिलता। काल की दृष्टि से जो नये ग्रन्थ लिखे गये हैं, जैसे चक्रदत्तसंहिता, शार्ङ्गधरसंहिता, भैषज्यरत्नावली आदि, उनमें भी इसका विशेष वर्णन नहीं। कुछ ग्रन्थों में तो इसका नाम तक नहीं, जैसे अर्कप्रकाश में।

हमारे दैनिक जीवन में इसे स्थान मिलने से रोगों से बचने की सम्भावनाएं कितनी बढ़ सकती हैं, यह पहले-पहल पुराणकारों ने अनुभव किया। रोधक और शामक दोनों चिकित्साओं में जनता के स्वास्थ्य को उन्नत करके नीरोग रहने की सम्भावनाएं यह पौधा बढ़ा सकेगा—इन विचारों ने इसके व्यापक प्रयोग किये जाने के लिए पुराणकारों को जो प्रेरणा दी, उसके फलस्वरूप ही हम पुराणों के पन्ने-के-पन्ने तुलसी की महत्ता प्रचारित करने में भरे देखते हैं। विशिष्ट गुणों को देखकर ही धर्माचार्यों ने इसे उच्च स्थान पर आरूढ़ किया और भारत का यह राष्ट्रीय पौधा बन गया था, जो न केवल हिन्दुओं में पूज्य रहा है परन्तु दूसरे धर्मावलम्बियों में भी इसके लिए पूज्य भाव रहे हैं।

एक सुन्दर बगिया का स्वामी दिन-रात अपनी बगिया को सजाने में लगा रहता था। धर्म-कर्म में उसका मन नहीं था। सिक्खों के धर्मगुरु ने उसे उपदेश किया था, 'पुण्य फल देने वाली तुलसी माला को धारण करके राम का नाम जपा कर।' पांचवें गुरु श्री अर्जुनदेव जी ठीक बताते हैं कि 'जब मन पवित्र नहीं तो तुलसी माला क्या करेगी ?'

पौराणिक गाथाएं—यह पौधा इतना अधिक पवित्र और विशिष्ट गुणों वाला क्यों समझा जाने लगा; इस बात पर प्रकाश डालने वाली बहुत-सी गाथाएं भारतीय पुराणों में मिलती हैं। तुलसी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, प्रकृतिखण्ड

के तुलस्युपाख्यान मे बारह से इक्कीस अध्यायों के अन्तर्गत बड़े विस्तार से एक कथा है। हम संक्षेप में उसे यहां दे रहे हैं :

तुलसी नाम की एक गोपी गोलोक में राधा की सखी थी। एक दिन राधा ने उसे कृष्ण के साथ विहार करते देखकर शाप दिया, "तू मनुष्य शरीर धारण कर।" दुःखी तुलसी को भगवान् कृष्ण ने समझौते का रास्ता बताया, "मनुष्य योनि में जन्म सही, परन्तु तप के द्वारा तू मेरा अंश पा लेगी।"

कार्तिक पूर्णिमा के दिन धर्मध्वज राजा की स्त्री माधवी के गर्भ से तुलसी मनुष्य योनि में पैदा हो गई। अत्यन्त रूपवती इस लड़की की तुलना किसी से नहीं हो सकती थी, इसलिए इसका नाम तुलसी पड़ गया। वन में कठोर तप करती हुई तुलसी को देखकर ब्रह्मा ने मनोवांच्छित वर मांगने को कहा।

तुलसी ने जवाब दिया, "भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं। आपसे कोई बात छिपी नही रहती। मैं अपनी बात कहे देती हूं। मेरा नाम तुलसी गोपी है। गोलोक में गोविन्द के साथ विहार करते-करते एक दिन मैं मूच्छित हो गई और तब भी मेरी तृप्ति नही हुई।" इसके बाद उसने राधा के शाप और कृष्ण की बात कहकर कृष्ण को पति के रूप में पाने की इच्छा बताई।

यह कथा लम्बी चलती है। ब्रह्मा के समझाने पर तुलसी ने शङ्खचूड़ नाम के राक्षस से विवाह कर लिया। एक युद्ध में शङ्खचूड़ ने समस्त देवताओं को हरा दिया। उसकी स्त्री का सतीत्व भंग हुए बिना वह नही मारा जा सकता था। देवों की रक्षा के लिए विष्णु ने शङ्खचूड़ का रूप धारण करके धोखे से तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। उस पतिव्रता स्त्री को इस छल का बोध हुआ तो उसने शाप देकर नारायण को पत्थर शालिग्राम बना दिया। उसका पति युद्ध में मारा गया। वह नारायण के पैरों पर गिरकर रोने लगी। नारायण के वर से

उसने अपनी मनुष्य देह त्याग दी।' उसके बालों से तुलसी का पौधा तथा शरीर से गण्डकी नदी बन गई। तब से उस पत्थर (शालिग्राम) की पूजा होने लगी और तुलसीदल उसके ऊपर चढ़ाया जाने लगा। तुलसी के बिना इसकी पूजा नही होती।

कार्त्तिक माहात्म्य (पद्मपुराण का भाग) में वृन्दा और जलन्धर की कथा आती है। महायुद्ध में एक बार रुद्र ने इन्द्र को मार गिराया। वृहस्पति ने महादेव को प्रसन्न करके इन्द्र को फिर जिला देने की प्रार्थना की और यह भी चाहा कि मस्तक वाले नेत्र से सुलगी हुई यह कालाग्नि शान्त हो जाय। रुद्र ने इस अग्नि को ज्यों ही समुद्र में फेंका, इससे एक बालक बन गया, जिसका नाम जलन्धर प्रसिद्ध हो गया। वृन्दा से इसका विवाह हुआ। देवों के सब अधिकारों को छीनकर युद्ध में इसने सब देवताओं को भगा दिया, परन्तु रुद्र और जलन्धर में तुमुल संग्राम चलता रहा। पतिव्रता वृन्दा का पतिव्रत धर्म भंग हुए विना जलन्धर मर नही सकेगा—यह जानकर विष्णु स्वयं जलन्धर का रूप धर वृन्दा के घर पहुंचे और उसे डिगाने में सफल हो गये। तब जलन्धर मारा गया। इस कपट को जानकर वृन्दा ने विष्णु को वहुत धिक्कारा और स्वयं आग में जलकर राख हो गई।' विष्णु उसके सुन्दर रूप पर मुग्ध हो चुके थे। वियोग से होने वाले आघात से वे विक्षिप्त हो गये। उसी राख की भभूत लगाकर उन्होंने जगत का संहार करना शुरू किया। वचाने का उपाय सोचा गया। लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती के दिये हुए तीन वीजों को देवो ने विष्णु के पास वो दिया और आमला, मालती तथा तुलसी—ये तीन वनस्पतियां उग आईं। पार्वती के वीज से तुलसी पैदा हुई थी। स्त्री रूप मे इन्हें देखकर विष्णु शान्त हो गये। लक्ष्मी ने चूंकि ईर्ष्या से वीज दिया, इसलिए उससे पैदा हुआ पौधा

निन्दनीय बर्बरी कहलाने लगा। तुलसी विष्णु की परम प्रिय बनी।

इस कथन मे तुलसी को पार्वती का अंश बताने से कथाकार शायद शैवों को भी तुलसी की पूजा करने के लिए समझाना चाहता है।

इस कथा का मूल सूर्य मालूम होता है। जलन्धर बादल को कहते हैं (जलं धरति इति)। सूर्य की गरमी (रुद्र) द्वारा समुद्र मे से वाष्प उठते है जिन्हें बादल (जलन्धर) कहा जाता है। इसी को अलङ्कार रूप में यहां रुद्र का समुद्र में अग्नि फेंकना और जलन्धर का जन्म लेना कहा गया है। बादल जब खूब भर जाते हैं और बरसते नही तब उस उमस से सब लोग (देव) घबराते हैं। झुण्ड को संस्कृत में वृन्द कहते हैं जिसका स्त्रीलिङ्ग रूप वृन्दा है। बादल की यह सारी घटा (वृन्दा) मानो जलन्धर की स्त्री है। बादलों में जब बिजली कौंधती है तो ये पृथिवी पर गिरने लगते हैं। यही वृन्दा का पातिव्रत भंग करना है। वृन्दा के नष्ट होते ही जलन्धर नष्ट हो जाता है।

यह भाव लेने से इस कथा में अश्लीलता नजर नही आती। पहली कथा का आशय भी सम्भवतः उससे सर्वथा भिन्न हो, जो प्रकट रूप में मालूम पड़ता है। गोलोक का कृष्ण सूर्य है और राधा है अनुराधा नक्षत्र। इस दिशा मे सोचने से सारी कथा की सगति लगाई जा सकती है।

बृहद्धर्म पुराण के सातवें और आठवे अध्याय में तुलसी का प्रादुर्भाव और माहात्म्य लिखा है। कैलाशपुर के साधुशील धर्मदेव नामक ब्राह्मण की पत्नी का नाम वृन्दा था। पति को बिना कहे एक दिन वह पड़ोसी के घर चली गई। धर्मदेव ने लौटकर जब उसे नहीं पाया तो गुस्से में शाप दिया, "तू भूखी

हो अपना घर छोड़कर इधर-उधर घूमती-फिरती है, इस कारण राक्षस का शरीर धारण कर।" जमीन पर आकर उस राक्षसी ने ब्राह्मण और गौ को छोड़कर सब जीव खा डाले। खाने को कुछ न मिल सकने से अन्त में वह कैलाश में भूखी मर गई। महादेवजी ने उसे पृथिवी पर पवित्र तुलसी पौधे के रूप में कार्तिक अमावस के दिन प्रकट कर दिया।

तुलसी विवाह—पुराणों में विष्णु के साथ तुलसी का विवाह करने का उपदेश किया गया है। पौधे को खूब पाल-पोसकर बड़ा किया जाता है। घर में जैसे कन्या को पालते हैं, वैसे ही तुलसी को घर में रखते हैं। कन्या के विवाह की तरह इसके विवाह में भी आजकल धनी लोग हजारों रुपया खर्च करते हैं। १३ नवम्बर, १९५१ के हिन्दुस्तान (दिल्ली) में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार खुर्जा की एक सेठानी इन्द्र मणि जटिया ने तुलसी का विवाह सालिगराम से रचाने में बीस हजार रुपये खर्च किये थे। विष्णु की प्रतिमा सोने की बनाई जाती है। शुभ मुहूर्त में, सामान्यतया कार्तिक मास में, खूब धूम-धाम से विवाह रचा जाता है। जप, यज्ञ, दान, दक्षिणा और बाजे-गाजे के बीच बरात आती है। विवाह की सम्पूर्ण विधि की तरह यहां भी वेदी बनाकर मन्त्रों के उच्चारण के साथ ब्राह्मण विधि-पूर्वक विवाह कराता है। हर साल कार्तिक महीने में यह विवाह रचाने से कार्तिक-व्रत की सिद्धि, कन्यादान का फल, मोक्ष प्राप्ति आदि फल मिलते लिखे हैं।

गौरीतन्त्र में सदाशिव पार्वती को बतलाते हैं कि साधुओं के साथ जो तुलसी का विवाह करते हैं, उनके पुण्य का तो कोई अन्त नहीं।

महाराष्ट्र में गन्ने के साथ तुलसी का विवाह करने की प्रथा चलित है।

तुलसी का विवाह करने से अक्षय पारलौकिक फल मिलने की इन बातों पर विश्वास और श्रद्धा करने वालों की संख्या कम नहीं। आशा है, ऐसे विद्वान् इन बातों पर प्रकाश डालेंगे। लोगों को कन्यादान के महत्व का पता लगे और लड़कियों का वध करने की जो घृणित प्रथा मध्यकाल से चल पड़ी थी, वह रुक जाय, इस उद्देश्य से शायद तुलसी विवाह किया जाने लगा हो। ●

३/ पुराणों में तुलसी

अतिशयोक्ति से विषय का प्रतिपादन संस्कृत साहित्य की विशेषता है। स्वस्थवृत्त तथा चिकित्सा विज्ञान के दूसरे अंगों का पुराणों में जहां वर्णन आया है, वहां भी इस शैली का आश्रय लिया गया है। यह भी सत्य है कि धर्म के नाम पर बन्धा हुआ-सा मनुष्य अपने कर्त्तव्यों को पालन करने में सदा तत्पर रहता है। इसीलिए सर्वसाधारण के लिए हितकर बातों को भी धर्म-शास्त्रों में स्थान दिया जाता रहा है। इस प्रकरण में तुलसी के महत्त्व के बारे में पुराणों से उद्धृत करके जो कुछ भी लिखा जा रहा है, उसे पाठक इसी दृष्टिकोण से देखकर उसका भाव समझने का प्रयत्न करें।

तुलसी का माहात्म्य सुनने मात्र से ही करोड़ों पापों से छुटकारा हो जाता है और सब इच्छाएं पूरी हो जाती हैं। तुलसी विष्णु भगवान् का अङ्ग है। जो अनेक प्रकार के उपहारों से तुलसी की सेवा करते है, वे विष्णु के उस परमपद मोक्ष धाम को जाते हैं। तुलसी के नाम का कीर्तन करने वाले और उसके वनों को देखने वाले विष्णु के समान हो जाते है।

जहां तुलसी का एक पौधा भी रहता है वहां ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सब देव वास करते हैं। पत्तों के बीच में केशव, आगे प्रजापति और वृन्त में हमेशा शिव रहते हैं। फूलों में लक्ष्मी, सरस्वती, गायत्री, चण्डिका, इन्द्राणी तथा दूसरी देव-पत्नियां रहती हैं। शाखाओं में इन्द्र, अग्नि, शमन, निर्ऋत, वरुण, पवन

और कुबेर बसते हैं; सूर्य आदि सब ग्रह, सब देवता, वसु, मनु, सारे देव, ऋषि, विद्याधर, गन्धर्व, सिद्ध और अप्सराएं तुलसी के पत्ते को आश्रय बनाकर रहते हैं। पुराणकार ने यहां वैदिक, शाक्त, शैव तथा तान्त्रिक आदि सब देवों का तुलसी में निवास कह दिया है। तुलसी की स्तुति करने के लिए बृहत्स्तोत्ररत्नाकर में कई स्तोत्र लिखे हैं। ब्रह्म वैवर्त्त पुराण में तुलसी के आठ नामों वाला एक स्तोत्र है। तुलसी की पूजा करते हुए इस स्तोत्र का नित्य पाठ करने से अश्वमेधयज्ञ का फल मिलने का विश्वास प्रकट किया जाता है।

प्रत्येक धर्म-कर्म में तुलसी अवश्य उपस्थित रहनी चाहिए, क्योंकि यह नारायण की सबसे प्रिय वस्तु है। तुलसी के तो एक पत्ते से ही भगवान् को प्रसन्न किया जा सकता है। इसके बिना देवों में सबसे श्रेष्ठ विष्णु प्रसन्न नहीं होते और यज्ञ, दान आदि सब कर्म विफल होते हैं। तुलसी के साथ दिया गया दान अपार होता है, और दान देने वाला निरक नहीं जाता। तुलसीवनों की छाया में दिया गया श्राद्ध पितरों की तृप्ति करता है। इसके बिना दिया गया श्राद्ध व्यर्थ जाता है। तुलसी माला धारण करने वाले ब्राह्मण को श्राद्ध में जो भोजन करवाता है, उसके पितर प्रसन्न रहते हैं। तुलसी के बीज झड़कर जिस भूमि में गिरते है, उस स्थान पर बड़े-बूढ़े (पितर) बैठना पसन्द करते हैं। पानी में तुलसी के पत्ते डालकर नहाने वाला सब तीर्थों में नहाया हुआ समझा जाता है। वह सब यज्ञों में बैठ सकता है।

वृन्दावन में पैदा हुई तुलसी की लकड़ी माला के मनके बनाने के लिए अधिक अच्छी समझी जाती है। इसे गले में धारण करने वाला पवित्र रहता है। उसके दर्शनमात्र से रोग भाग जाते हैं। वह पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाता है। तुलसीमाला पहनकर जो भोजन किया करता है,

वह पग-पग में वाजपेय फल प्राप्त करता है। स्नान के समय जिसके शरीर पर तुलसी माला है उसने तो निस्सन्देह गगा आदि सब तीर्थों में स्नान कर लिया है। इसे पहनकर दिये गए दान का फल करोड़ गुणा हो जाता है। गले, सिर, कानों, बाहों और हाथों में तुलसी माला पहनने वाला विष्णु के समान हो जाता है। माला धारण करने में देश, काल और स्थान का कोई नियम नहीं। सदा धारण की जा सकती है क्योंकि यह अपवित्र नहीं होती। यज्ञोपवीत की तरह पहनी जाती है। मलमूत्र त्याग के समय भी, इसे नहीं उतारना चाहिए।

तुलसी माला न पहनने वाले अपवित्र नरक में गिरते हैं। दुनिया के झंझटों में फंसे हुए और बुरी संगत में रहने वाले अथवा कुलीन, धीर, वेदवेदाङ्गों के विद्वान् ब्राह्मण जो कृष्ण की प्यारी तुलसी की निन्दा करते हैं, वे अत्यन्त कष्टप्रद नरक में जाते हैं।

गले में सदा तुलसी-माला न पहनने वाला वैष्णव कैसे हो सकता है? दीक्षित होने के बाद बिना माला पहने जो खाता है उसका अन्न सूअर का मल और पानी मदिरा समझनी चाहिए। प्राण संकट में पड़ जाने पर भी माला के बिना जो नहीं खाता वह सच्चा वैष्णव है।

'तुलसी की लकड़ी से बनी विष्णु की प्यारी माला को मैं गले में बांधता हूं। हे माले! तू मुझे कृष्ण का प्यारा बना दे।' यह मन्त्र पढ़कर गले में बांध ले। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बिना किसी सम्प्रदाय का विचार किये इसे पहन सकते हैं। परन्तु, पद्मपुराण के अनुसार ब्राह्मण को तुलसी की माला नहीं पहननी चाहिए। वैष्णव धर्म में दीक्षित हो जाने पर स्त्री, शूद्र, अन्त्यज, पतित आदि सबको तुलसी-माला पहनने का अधि-

कार मिल जाता है। राम के उपासक तुलसी काष्ठ की माला से राम नाम जपा करते हैं।

त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषद् में लेखक ने काल्पनिक भौगोलिक लोकों में 'तुलसी वैकुण्ठ' की कल्पना की है। यह परम कल्याणकर, अनन्त वैभवशाली, अमित तेज का भण्डार, अतिशय आनन्द से युक्त, तुलसी के जङ्गलों से भरा हुआ, बहुत सुन्दर, पवित्र चीजों में सबसे अधिक पवित्र, ज्ञान रूप, अनन्त तथा नित्य मुक्तों का स्थान है। इस प्रकार के तुलसीलोक में पहुंचकर उपासक दिव्य विमान पर बैठे महाविष्णु के सब अङ्गों पर लिपटी हुई अनन्त रूपवती तुलसी की स्तुति करता है।

बरसात के बाद कार्तिक में मलेरिया का अधिक प्रकोप होता है। इसलिए इस महीने में तुलसी का विशेष प्रयोग करने के लिए कहा गया है। इस समय पौधा भी खूब फला-फूला रहता है।

कार्तिक मास में तुलसी के अन्दर सब तीर्थ और सब देवता रहते हैं, इसलिए इस महीने में तुलसी-माला अवश्य पहननी चाहिए। कार्तिक में तुलसी के नीचे जो दिया जलाता है वह विष्णु का प्यारा बन जाता है। कार्तिक में तुलसी के कोमल पत्तों से प्रतिदिन विष्णु की पूजा करनी चाहिए। तुलसी के पत्तों और फूलों से कार्तिक में विष्णु की पूजा करने वाले के जन्म भर के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। असंख्य गौओं को दान देने से जो फल मिलता है, वह कार्तिक मास मे तुलसी के पत्तों का दान करने से मिल जाता है।

तुलसी को हाथ में लेकर की गई प्रतिज्ञा का जो पालन नहीं करता, वह समय के फेर में पड़ा रहता है। तुलसी के साथ जो झूठी शपथ उठा लेता है वह कुम्भीपाक नरक मे जाता है।

धागे में पिरोई हुई सुन्दर तुलसी-माला को विष्णु के भक्त विष्णु के गले में पहनाते हैं। सब फूलों और सब पत्तों से एक साथ विष्णु की पूजा करने में जो फल मिलता है, वह तुलसी के आधे पत्ते के साथ पूजा करने से मिलता है। तुलसी की मञ्जरियों से जो विष्णु की पूजा करता है वह फिर गर्भ धारण नहीं करता, उसे जन्म-मरण से मुक्ति मिल जाती है। तुलसी की लकड़ी को चन्दन की तरह घिसकर विष्णु पर लेप करने वाला स्वर्ग को जाता है। तुलसी की मञ्जरियों से जो विष्णु या शिव की पूजा हजार बार देवता का नाम लेकर उसके साथ एक-एक करके हजार मञ्जरियां चढ़ाता है, वह सब पापों से छूट जाता है। उसके सामने दान और व्रत क्या चीज है! व्रत कौमुदी में तुलसी के 'लक्षव्रत' का उपदेश है। एक-एक करके लाख पत्तों को कृष्णजी पर चढ़ाया जाता है। जबतक पूरे एक लाख पत्ते न चढ़ा दिये जाय, व्रत करने वाला उपवास रखता है। ●

४/ तुलसी रसायन

आयुर्वेद शास्त्र में बहुत-सी वनौषधियों को हजार की संख्या में प्रयोग कराने के आदेश लिखे मिलते हैं। 'हजार हरड़ों' और 'हजार पिप्पलियों' के प्रयोग से प्रत्येक वैद्य परिचित है। यहां भी तुलसी के हजार और लाख पत्तों के प्रयोग की ओर संकेत समझकर वैद्य महोदय रोगियों पर इनका प्रयोग करके बहुत लाभ पहुंचा सकते हैं। रोग की अवस्था, रोगी की प्रकृति और देश, काल आदि को देखकर वैद्य को निश्चय करना चाहिए कि 'वर्धमान क्रम' से अथवा दूसरी किस विधि से हजार या लाख पत्तों का प्रयोग कराना है। अच्छी आयु के एक स्वस्थ ब्राह्मण को मैं जानता हूं जो सालों से रोज़ तुलसी के पन्द्रह हरे पत्ते नियम से खा रहे हैं। अपने उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य वे स्पष्टतया तुलसी का नियमित सेवन बताते हैं।

तुलसी उपेक्षित क्यों रही?—अत्यन्त उपयोगी पौधा होने से भी इसका व्यापक प्रयोग क्यों नहीं हुआ? यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है।

जो वस्तु अत्यन्त हितकर होती है, उसे मनुष्य दूसरी चीजों की अपेक्षा अधिक अच्छा और ऊंची श्रेणी का समझने लगता है। उसे वह हिफ़ाजत से रखता है। वह प्रयत्न करता है कि उसे किसी प्रकार की हानि न पहुंचे, उसका अनादर न

हो। ये भाव ही उस वस्तु के प्रति मनुष्य के मन में सम्मान पैदा करते हैं। ज्यों-ज्यों, उसके प्रति सम्मान बढ़ता जाता है, वह असाधारण पदार्थ ऐसे अलौकिक गुणों वाला समझा जाने लगता है जिससे लाभ उठाने की योग्यता सामान्य मनुष्य में जैसे हो ही नहीं। एक विशेष प्रकार का वर्ग ही उसके प्रयोग करने का अधिकारी बन जाता है। यह वर्ग वह होता है जिसने कठिन समयों में उसकी रक्षा की है, जो निरन्तर उस पदार्थ के सम्पर्क में रहा है और वह उसके गुणों को भलीभांति जानता है।

वेदों तथा धर्मग्रन्थों की अवस्था का यही स्पष्टीकरण है, और तुलसी के सम्बन्ध में भी यह सत्य है। यहां तक कि इसे तोड़ने के लिए भी ऐसे नियम बना दिये गए थे जिससे विशिष्ट गुणों से सम्पन्न व्यक्ति नियत समयों में ही इसे तोड़ सकता था। विधिपूर्वक न तोड़ने से इसका अनादर हो जाने की आशङ्काओं ने धर्मभीरु जनता में इसके व्यापक प्रयोग को न होने दिया और इसी कारण भारतीय चिकित्सा में भी औषध के रूप में इसका उपयोग उपेक्षित रहा।

तोड़ने की विधि—"गोविन्द के हृदय को प्रफुल्लित करने वाली माता तुलसी! मैं तुझे नारायण की पूजा के लिए तोड़ने लगा हूं, तुझे नमस्कार हो। तेरे बिना हरशृङ्गार आदि फूलों और तरह-तरह के सुगन्धित पदार्थों की भेंटों से भी हरि की तृप्ति नहीं होती। कल्याणकारिणी! इसलिए मैं तुझे तोड़ने लगा हूं। हे महान् ऐश्वर्यवाली! तेरे बिना तो सब कर्म निष्फल रह जाते हैं। तुलसी देवी! इसीलिए मैं तुझे तोड़ने लगा हूं, मेरे लिए कल्याणकारिणी बन जा। तोड़ने से तेरे हृदय (जड़ों) पर जो आघात पहुंचे, दिव्य गुणों वाली! तू उसके लिए मुझे क्षमा कर देना। जगन्माता तुलसी तुझे नमस्कार हो।"

विष्णु का प्यारा मनुष्य स्नान करके, पवित्र वस्त्र पहनकर और हाथ जोड़कर यह स्तुति करने के बाद हर्ष से तीन बार तालियां बजा-बजाकर तुलसी के पत्तों को इतना धीरे-धीरे तोड़ना आरम्भ करे कि कोई छोटी शाखा भी न टूटे, जिससे पौधे को हानि पहुंचे। असावधानी से, जल्दी-जल्दी तोड़ने से शाखाएं टूट जायंगी और पौधे की जड़ हिल जायगी जिससे पौधा मर सकता है।

दाहिने हाथ से पत्तों को एक-एक करके तोड़कर साफ़ बरतन में रखते जाना चाहिए। तुलसी की मञ्जरियों को तोड़ने की भी यही विधि है। आवश्यकता के बिना इस उपयोगी पौधे को तोड़कर व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिए।

नहाये बिना ही जो मनुष्य तुलसी को तोड़कर पूजा करता है, वह अपराधी होता है और उसकी पूजा निष्फल जाती है। पूर्णिमा, अमावस, द्वादशी और संक्रान्ति के दिन, दुपहर को, रात में, रात और दिन की ठीक सन्धिवेलाओं में, अपवित्र स्थान पर (जैसे घर में मृत्यु हुई हो) और अपवित्र समय में तुलसी नहीं तोड़नी चाहिए। विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार, विष्णुपूजा के लिए द्वादशी को छोड़कर शेष सब दिनों में तुलसी दल तोड़ सकते हैं।

शास्त्रों में तुलसी को इतना महत्व क्यों दिया गया ?

१. तुलसी को जो उच्च धार्मिक स्थान मिल गया है, उसका मुख्य कारण तो यही है कि चिकित्सा प्रयोजनों में काम आने वाला यह एक ऐसा उपयोगी पौधा है जो प्रायः सारे साल सब जगह सुगमता से उपलब्ध हो सकता है।
२. इसके प्रयोग करने के तरीके बहुत सरल हैं।
३. अनजान के हाथ से दिया गया भी यह हानि नहीं करता।
४. इसको उगाने और इसे जीवित रखने में विशेष निपुणता की ज़रूरत नहीं।

५. जिन मकानों के साथ गृह-उद्यान नहीं वे इसे अपने छोटे घर में भी लगा सकते हैं।
६. घर में, गृह-उद्यान में अथवा मन्दिर के बगीचे में यह सुगन्ध फैलाता है जिससे वायु शुद्ध रहती है।
७. बिना मूल्य ही यह प्रत्येक गांव, प्रत्येक शहर और यहां तक कि प्रायः हर घर में मिल जाता है जिससे गरीब और अमीर सबकी पहुंच में है।

चरणामृत—रोधक चिकित्सा के रूप में तुलसी का विस्तृत उपयोग हम लोक में और आयुर्वेद में देखते हैं जिसका धर्म-कर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं। छोटे-मोटे रोगों से जनता को बचाये रखने की पवित्र भावना से धर्मगुरुओं ने इसे चरणामृत में देना आरम्भ किया होगा। पानी में पत्तों को डुबोये रखने का उद्देश्य यह है कि पत्ते सूखें नहीं। इन पत्तों के क्रियाशील उड्डनशील तेल कुछ अंश में पानी में घुल जाते हैं। इससे पानी में भी तुलसीदल के गुण आ जाते हैं। धर्माचार्यों की समझदारी तो देखिए कि वे इस पानी को यों नहीं फेंक देते। वे जानते थे कि पत्तों के गुणों में कुछ कमी अवश्य हुई है जिससे अकेले पत्ते उतना लाभ नहीं पहुंचायेंगे। इसलिए चरणामृत में तुलसीदल के साथ वह पानी भी देने की प्रथा चली जिसे हम आयुर्वेद की परिभाषा में तुलसीदल का हलका शीतकषाय कह सकते हैं। पत्तों सहित इस शीतकषाय को रोज पीने से बहुत-से रोगों से छुटकारा हो जाता है। यह अकाल मृत्यु को भी दूर करता है।

द्युब्वा नामक एक पर्यटक ने १८०६ (पृष्ठ ६५०) में लिखा था कि स्नान-पूजा के बाद तुलसी के पत्ते खाने की प्रथा इसलिए है कि शीतल जल द्वारा किये जाने वाले इन क्रियाकलापों में सरदी खाये जाने के भय से बच जाएं। आमाशय में यह ताप-

मान को ठीक रखती है और सरदी, जुकाम तथा अन्य रोगों से रक्षा करती है।

गुण—चरक ने तुलसी को हिचकी, खांसी, दमा, पसलियों के दर्द और विषविकार में गुणकारी पाया है। यह दुर्गन्ध दूर करती है, वायु और कफ को नष्ट करती है। नरहरि इसे कड़वे और चरपरे स्वाद वाली, भोजन में रुचि बढ़ाने वाली, गरम, सुगन्धित और कीड़ों तथा छोटे कृमियों को मारने वाली बताते हैं। धन्वन्तरि निघण्टु में इसे हलका, रूक्षताजनक और अग्नि-दीपक लिखा है। भावमिश्र और मदनपाल ने इसके गुण एक जैसे ही लिखे हैं। हृदय के लिए हितकर, त्वचा के रोगों को दूर करनेवाली और कष्ट से आते हुए पेशाब की बाधा को हटाने वाली है। शरीर में गर्मी और जलन पैदा करती है। कैयदेव की सम्मति में यह तेज़ है, विपाक में कड़वी है, उलटियों को रोकती है और आखों के रोगों में लाभ करती है। राजवल्लभ के लिखे हुए गुण ऊपर लिखे गुणों के अन्दर ही आ जाते हैं।

भोज्य-पदार्थों में व्यवहार—यूरोपियन इसका उपयोग चटनियों, शराबों आदि को स्वादु बनाने में करते हैं। उत्तर प्रदेश के देहातों में चावल, पुलाव, हलवा, खीर तथा दूसरी महंगी और दिलपसन्द खाने की चीज़ों को सुगन्धित करने के लिए तुलसी का प्रयोग किया जाता है। काली तुलसी में सुगन्ध अधिक होने से वही इन प्रयोजनों में बरती जाती है। पत्तों को पीसकर रस निकाल लेते हैं और जब पतीली में यह पक जाती है तो चूल्हे पर से उतारने के बाद रस के छींटे दे देते हैं। कहीं-कहीं तो तेज-पत्र के पत्तों की तरह पुलावों में छोड़ देते हैं। •

५/चिकित्सा में उपयोग

भारत के देसी और विदेशी सिविल सर्जनों तथा दूसरे डाक्टरों ने तुलसी को विविध रोगों की चिकित्सा में सफल परिणामों के साथ बरता है। आगे के पृष्ठों में हम उनके अनुभवों को आयुर्वेद के प्राचीन चिकित्सकों के अनुभवों के साथ दे रहे हैं।

महास्रोतस के रोग—आमाशय में और आंतों के अन्दर तुलसी का प्रभाव वातशामक है। ताजा रस उलटियों को रोकता है और कहा जाता है कि कीड़ों को भी मारता है। तुलसी के पत्ते, बेर की गुठली तथा खाण्ड प्रत्येक तीन ग्राम और कालीमिर्च एक ग्राम को पानी के साथ रगड़कर गोलियां बना लें। ये गोलियां वमन में देने से लाभ करती हैं। पत्तों के रस में दालचीनी का चूर्ण मिलाकर उलटियों को रोकने के लिए पिलाया जाता है। बीजों को पीसकर गौ के दूध के साथ उलटियों और दस्तों में दिया जाता है। दस्तों में सूखे पौधे का काढ़ा उत्तम दीपक औषध होता है। इससे लाभ न हो तो पंचाङ्ग के फाण्ट में जायफल का चूर्ण मिलाकर पिलाने से दस्त बन्द हो जाते हैं। प्रवाहिका (डिसेण्ट्री) और अजीर्ण में ताजे पत्तों के एक तोला रस को रोज सुबह पीने से लाभ होता है। तुलसी की मञ्जरी, सोंठ, पिप्पली, मुनक्का, लौंग, ताम्बूलपत्रों के डण्ठल, दालचीनी तथा खजूर प्रत्येक एक ग्राम और लोध पचास मिलीग्राम लेकर काढ़ा बना लें। बार-बार प्यास लगना, खाने-पीने की अनिच्छा और अम्लता बढ़ जाने के कारण आमाशय तथा अन्न-

प्रणाली की जलन में पिलाने से यह तीनों दोषों को शान्त करता है। पेट की पीड़ा में तुलसी तथा अदरक का रस समान भाग लेकर छोटा चम्मच भर दो-तीन बार तक कोसा-कोसा पिला देते हैं।"

तुलसी के ग्यारह पत्तों को एक ग्राम वायविडंग के साथ रगड़कर दो गोलियां बना लें। सुबह-शाम ताजे पानी के साथ एक गोली सात दिन तक सेवन करने से पेट के कीड़े मर जाते हैं।

दोपहर के भोजन के बाद या किसी दूसरे समय तुलसी के चार-पांच पत्ते प्रतिदिन चबाकर रस अन्दर लेना मन्दाग्नि, अरुचि, वमन और कृमियों के लिए लाभकारी होता है। इससे मुख का बिगड़ा हुआ स्वाद ठीक होता है, मुख की दुर्गन्ध दूर होती है, श्वास स्वच्छ होता है और पाचन-संस्थान ठीक काम करता है। सनत्कुमार की सम्मति में भी भोजन के बाद मुख की शुद्धि के लिए कुछ पत्ते चबा लेने चाहिएं। जिन्हें पान चबाने की आदत है, वे भोजन के बाद तुलसीदल खाना आरम्भ करें, तो इससे उन्हें लाभ होगा। मसूड़ों और दांतों को खराब करने के पान के दुर्गुण से वे बचे रहेंगे। गावों में चूंकि सब जगह पान सुलभ नहीं होता, इसलिए जो दवाएं ताम्बूल स्वरस के अनुपात से देनी होती हैं, उन्हें देहाती वैद्य तुलसीरस के अनुपात से दे दिया करते हैं। तुलसी के पत्ते पान का प्रतिनिधि द्रव्य बन सकते हैं। पान की तरह इन पर भी सुपारी-कत्था लगाकर चबाने की आदत श्रीलङ्का में देखी जा सकती है।

जुकाम और नाक के रोग—सिर का भारीपन, सिरदर्द, आधासीसी, मृगी तथा बेहोशी में, जुकाम में, नाक की गंध लेने की शक्ति के नष्ट हो जाने में, और नाक के कीड़ों में तुलसी सिर में संचित दोषों को निकालने के लिए दी जाती है। ताजे

त्तों के रस को नाक में डालने से नाक के कीड़े मर जाते हैं और नाक से दुर्गन्ध आनी बन्द हो जाती है। सूखी पत्तियों को पीस-कर नुस्वार की तरह सूंघने से नाक से बहुत ज्यादह गंदगी का सदैव बहते रहना रुक जाता है। यह नासाकृमियों को भी मारता है। बंगाली इस नुस्वार को जुकाम में बहुत बरतते हैं। नाक के रोगों की चिकित्सा में चक्रपाणि ने जिन विभिन्न प्रकार के तेलों का प्रयोग किया है, उनमें तुलसी भी डलती है। ये तेल नाक की दुर्गन्धि को हटाते हैं। तुलसी के पत्ते, कटेली की जड़, दंती मूल, वच, सोहांजने के बीज, पिप्पली, सेंधा नमक, कालीमिर्च और सोंठ से विधिपूर्वक एक तेल बनाया जाता है। जुकाम में और दुर्गन्धित नाक में इसकी कुछ बूंदें नथुनों में छोड़ते हैं। तुलसी के रस को वासे के रस में मिलाकर श्लैष्मिक जुकाम में देते हैं।

सरदियों में ठण्ड खा जाने से जब नाक और श्वास प्रणालियों की श्लैष्मिक स्तरों में कफ का प्रकोप हो गया हो और परिणामतः जुकाम, छींकें, सिरदर्द और ज्वर हो तो पत्तों के रस को शहद के साथ देते हैं। रोग के प्रारम्भ में ही तुलसी का प्रयोग शुरू कर दिया जाय, तो यह नाक की श्लैष्मिक झिल्ली से शोथ और संक्रमण को आगे नहीं बढ़ने देती जिससे सांस की नलियां और फेफड़े ठण्ड लगने से बच जाते हैं। इन अवस्थाओं में वैद्य इसका एक सरल योग बरतते हैं जो इस प्रकार तैयार किया जाता है : नीरोग साफ़ कालीमिर्चों के कपड़छन चूर्ण को तुलसी के हरे पत्तों के स्वरस की भावनाएं दे-देकर छाया में सुखाते जायं। इक्कीस भावनाएं देने के बाद बने चूर्ण को चम्मच भर शहद के साथ चाटते हैं या गरम पानी से फंका देते हैं।

श्वास संस्थान के रोग—कफ निस्सारक गुण के कारण इसे कफप्रकोपजन्य अनेक अवस्थाओं में और श्वास-सस्थान के रोगों में प्रयोग करते हैं। शहद, अदरक और प्याज के रस को

साथ इसके पत्तों का रस उत्तम कफ निस्सारक औषधि बन जाती है और खांसी, जुकाम तथा श्वास प्रणाली की शोथ में दी जाती है। तुलसी की मञ्जरी, सोंठ और प्याज को एक जगह कूटकर और शहद मिलाकर चटाने से सूखी खांसी और बच्चों के दमे में लाभ होता है। खांसी में और गले पड़ जाने में हरे पत्तों को सेंककर नमक के साथ चबा जाते हैं। खांसी में बलगम आता हो, तो चरफ शहद के साथ काली तुलसी का रस मिलाकर चटाते है। तुलसी की मञ्जरियों मे थोड़ा घी मिलाकर निर्धूम अंगारों पर रखें और उसमें से उठते हुए धुएं को खांसी के रोगी को पिलाएं। ऊपर से दूध पीने को दें। तुलसी बीज, गिलोय, सोंठ और कटेली की जड़ को समान भाग में लेकर बनाये चूर्ण को दो ग्राम तक दिन में दो-तीन बार खांसी और छाती के विकारों में खिलाते हैं। सूखे पौधे के बारह ग्राम यवकुट को दस गुने पानी में काढ़कर जुकाम और खांसी मे पिलाते है। श्रीलंका में भी खांसी और जुकाम के काढ़ों में पौधे को डालते हैं। पोखर मूल आदि कासहर द्रव्यों के साथ मिलाकर तुलसी स्वरभेद, खांसी, दमा और पसलियों के दर्द में दी ज़ाती है। निमोनियां में हरे पत्तों के साथ काली मिर्च को पीसकर निकाले रस को पिलाते हैं। दमे में तुलसी का प्रयोग होता है। दमे को दूर करनेवाली दस औषधियों में चरक ने इसे गिनाया है।

देशी चाय—छाया में सुखाये हुए तुलसी के पत्ते दो किलो आठ सौ अस्सी ग्राम, दाल चीनी आधा किलो, तेजपत्र आठ सौ अस्सी ग्राम, सौफ एक किलो सात सौ साठ ग्राम, इलायची आठ सौ अस्सी ग्राम, अगियाघास दो किलो छह सौ चालीस ग्राम, बनफशा दो सौ पचास ग्राम, ब्राह्मी बूटी आठ सौ अस्सी ग्राम और लालचन्दन एक किलो सात सौ साठ ग्राम। गण्डासे से कुतरकर इनके जो के बराबर छोटे-छोटे टकड़े कर लें।

एक लिटर स्वच्छ उबलते पानी में बारह ग्राम डालकर उतार लें। जरा सीझने दें। फिर छानकर इच्छानुसार दूध और मीठा डालकर पियें।

विविध ब्राण्डों की चाय दिल और दिमाग़ को कमजोर करती है, ज्ञानवाही तन्तुओं को निर्बल बनाती है और रक्त-वाहिनियों की दीवारों को कठोर बना देती है। परिणाम यह होता है कि समय से पूर्व ही बुढ़ापे के चिन्ह प्रकट होने लगते हैं। यह सुगन्धित और ताजगी देने वाला पेय इन सबसे बचाता है और सच्ची स्फूर्ति तथा आनन्द प्रदान करता है।

आर्य-संस्कृति के प्राचीन केन्द्र गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार में जब चाय पीने की आदत वाले अतिथि आया करते थे, तो कुलपति स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी उन्हें तुलसी के पत्तों से बनी चाय पीने को दिया करते थे। भारत के भूतपूर्व वायसराय लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड और संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) के सेवामुक्त गवर्नर लॉर्ड मेस्टन तथा उस समय के अनेक अंग्रेज कमिश्नरों के आतिथ्य में तुलसी की चाय ही दी जाती रही है। जलपान के समय उन अभ्यागतों में यह बातचीत का एक मनोरञ्जक विषय रही है।

जो लोग चाय पीने वाले हैं, वे इसका सेवन करके चाय पीना छोड़ देते हैं। जो लोग बहुत तेज चाय पिया करते हैं, परिमाण में भी ज्यादा पीते हैं और दीर्घकाल तक पीते रहने के कारण इस नशे के आदी हो गये हैं, उन्हें एकदम चाय छुड़ाना बहुधा कठिन होता है। ऐसे रोगियों से इस नशीले पेय को छुड़ाने में चिकित्सक को विशेष प्रयत्नशील होना पड़ता है। चिकित्सक को इस बात पर आग्रह नहीं करना चाहिए कि वह पहले दिन से ही चाय का सर्वथा परित्याग कर दे।

एक समय रोगी जितनी चाय पीता है उसमें सूखी चाय

कितनी डाली जाती है—इसे बात को मालूम कर लेना चाहिए। पहले दिन इस चाय के परिमाण को थोड़ा कम करके और कम की गई चाय के बराबर तुलसी वाली देसी चाय मिलाकर चाय तैयार कराएं। रोगी को यह अखरेगी नहीं और वह अनुभव कर रहा होगा कि जैसे वह इसमें उतना ही मजा और नशा ले रहा है। धीरे-धीरे देसी चाय का परिमाण बढ़ाते जाइये और चाय को कम करते जाइये। इस तरह अन्त में एक दिन देसी चाय पर ही आ जायं। जुकाम, खांसी, कफ, गले के रोग तथा ज्वरों में इसे पीने को दिया जाता है।

गुरुकुल कांगड़ी की सूझ, तुलसी की इस चाय को बहुत-सी आयुर्वेदिक फ़ार्मेसियां बड़े पैमाने पर बनाकर बेच रही हैं। उनमें मिलाये जाने वाले घटकों में और उनके अनुपात में बहुत विविधता है। इनकी सुगन्ध और स्वाद को उन्नत करने की बहुत गुन्जाइश है। जिन संस्थाओं या फ़ार्मेसियों के साथ रासायनिक प्रयोगशालाएं विद्यमान हैं, उन्हें इस सम्बन्ध में खोज करनी चाहिएं। तुलसी के हरे पत्तों को तोड़ने के समय, उन्हें सुखाने के तरीके और उन्हें तथा अन्य घटकों को 'तुलसी चाय' में एक नियत अनुपात में मिलाने से पेय की सुगंध और स्वाद में आने-वाले परिवर्तनों का सूक्ष्मता से अध्ययन करते हुए एक ऐसे स्वादिष्ट पेय का निर्माण करना चाहिए, जो सर्वसाधारण में, बाजारू चाय के मुकाबले में अधिक लोकप्रिय हो सके। देश के सम्पन्न संगठन वैज्ञानिक आधार पर अन्वेषण करके एक ऐसा पेय निर्माण कर सकते हैं, जो समस्त भारत ही नहीं; विदेशों में भी अपना स्थान बना ले।

मस्तिष्क और हृदय—तुलसी के पांच-सात पत्तों को तीन-चार काली मिर्चों के साथ सरदाई की तरह रगड़कर एक गिलास बना लें। सुबह खाली पेट इक्कीस दिन बराबर पिया

जाय तो यह पेय दिमाग़ की गर्मी को दूर करता है और दिमाग़ को ताकत देता है। हृदय-उत्तेजक होने से यह दिल को बलवान् बनाता है। सरदियों में यह पेय अधिक पसन्द किया जाता है। अमीर लोग इसमें बादाम आदि मिलाकर सरदाई घोट लेते हैं।

भरतपुर के एक वैद्य ने एक लेख में लिखा था कि उनके पास 'तुलसी कल्प' नामक एक हस्तलिखित प्राचीन पुस्तक है। उसमें लिखा है—"ब्राह्म मुहूर्त में उठकर स्नानादि से निवृत्त होने के बाद प्रतिदिन तुलसी के पांच पत्ते एक घूट जल से निगल जाने वाले का बल और तेज बढ़ता है। उसकी मेधा और स्मरण-शक्ति तीव्र हो जाती है।"

चरक और गोविन्ददास के महानील तेल में तुलसी पत्ते डाले जाते हैं। पीने से, सिर पर मलने से और नाक में डालने से यह तेल मस्तिष्क तथा सिर के सब रोगों को दूर करता है, बालों को सफ़ेद होने से रोकता है, आंखों की ज्योति को बढ़ाता है और दीर्घ आयु प्रदान करता है।

हरे पत्तों को पीसकर मृगी के रोगी के शरीर पर रोज उबटन करना चाहिए। पत्तों के रस में थोड़ा नमक मिलाकर नाक में टपकाने से मूर्च्छा और बेहोशी तत्काल दूर हो जाती है।

शोधक रसायन—तुलसी देखने, विचारने, सूंघने, बोलने, स्वाद लेने आदि सब शक्तियों को स्थिर रखने वाली है। मुख, आंख, कान, गला, कन्धे, हृदय, नाभि, कमर, जांघें, गोडे, पैर आदि सब अंगों को सुरक्षित रखने वाली है। तुलसी का सेवन शरीर में संचित मलों को निकालता है जिससे प्रत्येक अवयव पवित्र हो जाता है। मन, वाणी और शरीर शुद्ध हो जाते हैं। तुलसी की मिट्टी को या तुलसी की लकड़ी को चन्दन की तरह

घिसकर माथे पर सदा लेप करने से वंश-परम्परा में चलने वाले रोगों को रोकने में सहायता मिलती है। तुलसी सब रोगों से बचाकर मन और शरीर को पवित्र करती है। रोज तुलसी के पत्ते खाने वाला सदा स्वस्थ और परम प्रसन्न रहता है। दूषित जल को शुद्ध करने के लिए तुलसी के पत्ते पानी में डाल देते हैं।

वातनाड़ियों के रोग—वातनाड़ियों के विकारों में, जैसे गृध्रसी आदि नाड़ियों की शूल और शोथ में, पत्तों के पानी में बनाये कषाय से रोगग्रस्त वातनाड़ी को पसीना देते हैं। इस क्रिया को 'नाडी स्वेद' कहते हैं। मॉरीशस द्वीप में इसके गरम काढ़े से आमवात और पक्षाघात मे आक्रान्त भागों को धोया जाता है और भाप दी जाती है। उरुस्तम्भ (टांगों के लकवे) में पंचांग के गरम क्वाथ से रुग्ण भाग को धोते हैं और बीजों को पीसकर उस पर लेप करते हैं। पत्तों को दही और सेंधा नमक के साथ रगड़कर लेप करने से भी उरुस्तम्भ ठीक हो जाता है। वैद्य जीवन में लोलिम्ब राज बताते हैं कि पत्तों के रस को काली मिर्च के चूर्ण और घी में मिलाकर बनाये योग लघु राज-मृगांक को प्रबल वातव्याधि मे भी देने से रोग शान्त हो जाता है।

प्रजनन संस्थान के रोग—तुलसी पोषक और वाजीकरण गुण के लिए उपयोग की जाती है। यह वीर्य को गाढा करती है और पुंस्त्व शक्ति को बढ़ाती है। बीज लेसदार और लेपक होते हैं। जननेन्द्रिय तथा मूत्रसंस्थान के विकारों में दिये जाते हैं। नपुंसकता में दी जाने वाली अनेक दवाओं में पीसे हुए बीजों को डालते हैं। ये वीर्यवर्द्धक हैं और वीर्य की तरलता को दूर करते हैं। तुलसी के बीज साठ ग्राम, पोस्त के डोडे पचास ग्राम, गोखरू साठ ग्राम, कौंच के बीज पैंतीस ग्राम, मुसली पचास

ग्राम और मिश्री सत्तर ग्राम को कूटकर कपड़छन कर ले। एक-डेढ़ ग्राम की मात्रा में यह चूर्ण वीर्य की निर्बलता में दिया जाता है। स्तम्भन के लिए लोग बीजों के चूर्ण को या जड़ के चूर्ण को पान में रखकर सेवन किया करते हैं। इससे बल की भी वृद्धि होती है। तुलसी के बीजों या जड़ को चूर्ण करके समान भाग पुराने गुड़ में मिलाकर डेढ़ से तीन ग्राम तक सुबह-शाम गाय के दूध के साथ लिया जाय तो वीर्य के विकार दूर हो जाते हैं। वीर्य को पुष्टि देकर पुंस्त्वशक्ति बढ़ाने वाली दवाओं को ढूंढने वाले युवकों और अधेड़ों को इसके पांच-छह सप्ताह के सेवन से लाभ होता है। स्वप्नदोष को रोकने के लिए इसकी जड़ को घोटकर पिलाया जाता है। थोड़ी-सी इलायची और बारह ग्राम सालवमिश्री के चूर्ण के साथ पत्तों का काढ़ा प्रतिदिन लिया जाय तो यह एक पोषक वृष्य पेय का काम करता है।

स्त्रियों के रोग—बीजों का चूर्ण मासिक धर्म को जारी करने के योगों में डाला जाता है। पत्तों के काढ़े की एक प्याली हर महीने रजोदर्शन के बाद तीन दिन तक पी ली जाया करे तो गर्भ ठहरने की सम्भावनाएं कम रह जाती हैं। देहातों में स्त्रियां गर्भनिरोध के लिए इसे इस्तेमाल करती हैं।

तुलसी के बीज और नई आमाहल्दी को समभाग में पीसकर योनि में छिड़कने से योनिभ्रंश ठीक हो जाता है। गर्भावस्था में पेट की दीवार के खिंच जाने से त्वचा की निचली स्तर फट जाती है, जिससे पेट पर दरारें-सी दिखाई देती हैं। ये दरारें उरःस्थल के नीचे पड़ जाती हैं। इन दरारों को क्रिकिस (स्ट्राया ग्रेविडेरम) कहते हैं। इनमें खुजली हुआ करती है। तुलसी के कल्क को इन पर मलकर इसकी चिकित्सा की जाती है। इससे खुजली शान्त हो जाती है।

मनुष्यों के लिए अमृततुल्य यह औषध पुत्र चाहने वालों की

इच्छा पूर्ण करती है। जिस स्त्री के बच्चे मर जाते हों, रोज सेवन कराने से यह उसके उत्पादक अंगों को शुद्ध कर देती है और तब वह दीर्घजीवी नीरोग बच्चे पैदा करने लगती है। बांझ औरत को एक साल तक खिलाई जाय तो उसे गर्भ ठहर जाता है। लड़की चाहने वालों के घर में लड़की पैदा हो सकती है। तुलसी के प्रयोग से स्त्री को वश में करना भी ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है। इसमें से जो प्रिय गन्ध निकलती है, उसे स्त्रियां बहुत पसन्द करती हैं। आजकल का युवक अपनी प्रेयसी को प्रसन्न करने के लिए तरह-तरह के सेण्टों के उपहार देता है, परन्तु एक समय वह था कि जब रूठी हुई सुंदरियों को तुलसी सुंघाकर ही मना लिया जाता था। तुलसी गण का पौधा बर्बरी तो आज भी पपर्यूमरी में बहुत पसन्द किया जा रहा है।

बच्चों के रोग - पत्तों का फाण्ट दीपक और पाचक के रूप में बच्चों के आमाशयिक रोगों में और जिगर के विकारों में बहुत प्रयोग किया जाता है। बच्चों की उदरशूल में पत्तों का ताजा रस अकेला या एक-डेढ़ ग्राम सोंठ के साथ दिया जाता है। बीजों को पीसकर बच्चों की उलटियों और दस्तों में गौ के दूध में घोलकर मिला देते हैं। एक साल के बच्चे के लिए बीजों की मात्रा १२०-१८० मिलिग्राम है और इस मात्रा में ये दिन में तीन या चार बार तक दिये सकते हैं। पत्तों के रस में शहद मिलाकर चटाने से दस्तों और खांसी में लाभ होता है। सर्दियों में इसे कोसा करके देना चाहिए। पत्तों के रस का शर्बत बनाकर छोटा चम्मच भर देने से बच्चों की सरदी, जुकाम, खांसी, उल्टी, दस्त, पेट का फूलना आदि रोग दूर हो जाते हैं। सुस्त और फिसड्डी बच्चों में डाक्टर वेरन ने जब बहुत-सी एलोपैथिक दवाओं को निष्फल देखा तो उसने तुलसी के काढ़े को उपयोग किया और इसे लाभदायक पाया। ●

६/ शामक चिकित्सा में तुलसी

तुलसी में जो विशिष्ट गन्ध आती है, उसके कारण जहां यह पौधा उगता है, मच्छर और कीड़े उस स्थान के पास नहीं आते। यहां तक कहा जाता है कि सांप भी इसके पास ठहर नहीं सकते। घरों में या घरों के आसपास और गृह-उद्यान में इसके पौधे लगाने से मलेरिया और मच्छरों का घर में प्रवेश कम होता है और मलेरिया से बचने में सहायता मिलती है। कुछ पाश्चात्य डॉक्टरों के मत में भी मलेरिया से लड़ने के लिए यह सस्ता हथियार है। सर जौर्ज वुड ने १९०५ में 'लंदन टाइम्स' में लिखा था कि बम्बई में जब विक्टोरिया गार्डन और म्यूज़ियम की इमारत बन रही थी तो उन पर काम करने वाले लोगों में मलेरिया बुरी तरह फैल गया। एक हिन्दू मैनेजर की सलाह से उस समय सब बगीचों के चारों ओर पवित्र तुलसी के पौधे लगा दिये गए जिससे मच्छरों की बाढ़ एक दम रुक गई और बगीचों में रहने वाले मालियों तथा अस्थायी रूप से रहने वाले राजों में फैला हुआ मलेरिया बुखार सर्वथा निकल गया। इससे पहले सारे बम्बई में ये बाग़ सबसे अधिक मलेरिया से आक्रान्त रहते थे। लंदन की इम्पीरियल इंस्टिट्यूट के डॉक्टर मोल्डिंग और डॉक्टर पेली ने यह बतलाया है कि तुलसी के अन्दर एक ऐसा उड़नशील तेल है, जो हवा में मिलकर ज्वर को उत्पन्न करने वाले सब जन्तुओं को नष्ट कर देता है। अगस्त्य संहिता के

अनुसार तुलसी वन के चारों ओर तीन किलोमीटर तक की वायु को इसकी सुगन्ध शुद्ध कर देती है।

पुराणों का यह कथन सर्वथा सत्य है कि जिस घर के सामने या आंगन में तुलसी का बाग़ लगा रहता है, वह घर तीर्थ के समान पवित्र रहता है और उस घर में यम के दूत (मलेरिया के मच्छर अथवा रोगोत्पादक कीटाणु) तथा दूसरी प्राणनाशक व्याधियां नहीं घुसने पातीं और वहां के रहने वाले अकाल मृत्यु के पंजे से बचे रहते हैं।

महाराष्ट्र के कुछ लोग तुलसी के गमलों को बिछौने के पास रखकर सोते हैं और कहते हैं कि तब उन्हें मच्छरदानी की जरूरत नहीं रहती। तुलसी का रस शरीर पर चुपड़ लेने से मच्छर नहीं काटते। रात को बिस्तर पर जाने से पहले मुख तथा बिना ढके हुए नग्न भागों पर तुलसी के पत्तों को मलकर सोने से मच्छर दूर रहते हैं। कुछ पत्ते और छोटे-छोटे कोमल शाखा-शिखर या पुष्पमञ्जरियां बिस्तर में रखकर सोना मलेरिया के मच्छरों के आक्रमण और इसके हानिकर प्रभाव को रोकने में सहायक होता है।

मलेरिया की शामक चिकित्सा—राजकीय सम्मेलन ने अपनी सम्मति प्रकट की थी कि काली तुलसी से मलेरिया का उपद्रव बहुत कम हो जाता है। शार्ङ्गधर का अनुभव है कि पत्तों का रस कालीमिर्च के साथ पीने से विषमज्वरों को नष्ट करता है। चढ़े हुए बुखार में आठ-दस पत्तों को कालीमिर्चों के साथ खिला देते हैं। फिर बुखार न चढ़ जाय—इसके लिए चार-पांच काली मिर्चों को पत्तों में लपेटकर बुखार आने के समय से पहले ही तीन-चार बार दे देते हैं। मलेरिया ज्वरों में जड़ का काढ़ा देने से पसीना आकर बुखार उतर जाता है। पत्तों का फाण्ट भी मलेरिया में देते हैं। तुलसी के हरे पत्तों को तोड़कर तोल लें।

इस से आधी (तोल में) कालीमिर्चों के साथ घोटकर बेर जितनी बड़ी गोलियां बना लें। छाया में सुखा लें। ये गोलियां तीन-तीन घण्टे बाद मलेरिया ज्वरों में दो-दो देते है। औषधालयों में प्रयोग करने के लिए ये गोलियां अच्छी रहती हैं। काली-मिर्चों के बारीक चूर्ण को तुलसी के रस की सात भावनाएं दे कर छाया में सुखा लें। चने के बराबर गोलियां बना लें। ज्वर आने से पहले एक-एक घण्टे के अन्तर से एक-एक करके तीन गोलियां दे दें।

धर्मार्थ औषधालयों में जनता का इलाज करने के लिए मैं तुलसी के व्यवहार की सिफारिश करूंगा। यह सत्य है कि मलेरिया में तुलसी सिन्कोना, कुनीन, एटेब्रीन आदि औषधियों के समान प्रभावकारी नहीं, परन्तु फिर भी मैं इसे उन दवाओं के स्थान पर उपयोग करने की सलाह देता हूं। इसके निम्न-लिखित कारण हैं :

१. सर्वसाधारण तक ये मंहगी दवाएं पहुंचाई नहीं जा सकतीं।
२. ये दवाएं इस देश के लोगों की प्रकृति के अनुकूल नहीं, जिससे अधिक लोग सिर चकराना, कान में सांय-सांय की आवाज होना, बहरापन, मुंह सूखना, खुश्की आदि (सिन्को-निजम आदि) की शिकायत करते है।
३. इन उपद्रवों से बचने के लिए दूध जैसे पुष्टिप्रद और स्नेहन पदार्थों को तथा सन्तरे आदि फलों को प्रचुर परिमाण में लेना रोगी के लिए आवश्यक होता है। भारतीय जनता की गरीबी को देखते हुए औसत आदमी के लिए यह सम्भव नहीं।

सरदी लगकर आने वाली मलेरिया की क़िस्मों में मृत्यु-ञ्जयरस को तुलसी रस के अनुपान से देते हैं। त्रिभुवनकीतिरस

में तुलसीस्वरस की भावना देते हैं। नौसादर, कालीमिर्च, कल्मीशोरा और लाल फिटकरी को समान भाग में लेकर कूट लें। तवे पर रखकर जरा भून लें। फिर तुलसी के रस की इक्कीस भावनाएं देकर चने के बराबर गोलियां बना लें। मलेरिया में इनका प्रयोग किया जाता है।

पित्तप्रधान ज्वरों में जब बार-बार पीली उलटियां आती हैं और रोगी को प्यास बहुत सताती है तो उसे एक ऐसी तृषाशामक औषध की आवश्यकता होती है जो यकृत् में संचित मलभूत पित्त को निकालने वाली हो। दीपक, तृषाशामक, ज्वरहर, अनुलोमक और पित्तविरेचक होने से तुलसी ऐसी अवस्थाओं में रोगी के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होती है। पत्तों के ताजे रस में जरा-सी मिश्री मिला कर थोड़ी-थोड़ी देर बाद देते रहना चाहिए।

मलेरिया तथा अन्य ज्वर—शीतप्रधान रोगों में तुलसी विशेष रूप से उपयोग की जाती है। सरदी लगकर चढ़ने वाले बुखारों में देने से ज्वर की शीतावस्था के समय को कम करती है। पचपन ग्राम तुलसी के पत्तों को सात-आठ कालीमिर्चों के साथ कुचल लें। आधा लिटर पानी में ११५ मिलीलिटर बच रहने तक पका लें। ५५ मिलीलिटर की तीन-चार मात्राएं दिन भर में दे डालें। मलेरिया बुखारों में, सरदी लग जाने में तथा श्लेष्मज्वर (इन्फ्लुएंजा) आदि में यह लाभ करता है। पत्तों के एक चम्मच रस के साथ थोड़ी-सी कालीमिर्च मिलाकर श्लैष्मिक ज्वरों और सततज्वरों की शांत अवस्था में दिया जाता है। तुलसी के पत्तों और कुम्भी के फूलों का कालीमिर्च के साथ बनाया काढ़ा कोंकण में सततज्वरों में दिया जाता है। चिरस्थायी ज्वरों में एक चम्मच पत्रस्वरस रोज सुबह देने से लाभ होता है। मूनल,

स्वेदक और अनुलोमक होने से यह मार्गों की शुद्धि करता है। तुलसी के द्वारा ठीक-ठीक चिकित्सा की जाए तो विश्वास किया जाता है कि क्षय की प्रथमावस्था से रोगी को बचाया जा सकता है।

तुलसी सेनेटोरियम—स्वास्थ्य सुधार के लिए आजकल पुराने रोगियों को पहाड़ों पर भेजने के लिए चिकित्सक आदेश दिया करते हैं। वहां पर जो लम्बे-लम्बे चीड़ के वृक्ष उगे रहते हैं, उनके बीच में से गुजरती हुई वायु उनके तैलीय रेजिन की स्वास्थ्यप्रद गन्ध को साथ ले लेती है। खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त कराने में यह वायु रोगियों के लिए सचमुच वरदान होती है। हमारे देश में एक समय रोगियों को तुलसी के जंगलों या बगीचों में रखने का रिवाज रहा है। तुलसी में से उड़ने वाले सुगन्धित तेल आसपास की वायु में भरे रहने से उस वायु को सुगन्धित और शुद्ध रखते हैं। यह वायु अन्तःश्वास में जब फेफड़ों के अन्दर पहुंचती है तो सामान्य रक्त-संचार में तुलसी के निःसंक्रमण करने के तथा दूसरे प्रभावों को पहुंचा देती है जिससे शरीर के प्रत्येक कोष पर इसका सूक्ष्म असर पड़ता है, फेफड़े नीरोग होते हैं, शरीर का प्रत्येक अवयव, चाहे वह सूक्ष्म हो या स्थूल, नयी स्फूर्ति और प्रेरणा पाता है। दुःसाध्य रोगी भी स्वस्थ हो जाता है।

पण्ढरपुर में विठोबा के मन्दिर के आसपास के स्थान की आरोग्यता का कारण यही बताया जाता है कि उसके चारों ओर तुलसी का जंगल है।

तुलसी की सुगन्ध को लिये हुए वायु जहां-जहां जाती है उस स्थान की हवा, मिट्टी, पानी और चारों ओर के वायुमण्डल

को शुद्ध करती जाती है। इस प्रकार तुलसीवन के पास गांवों में रहने वाले सब प्राणी स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं।

तुलसीवनों में जो स्वास्थ्य-गृह (सेनेटोरियम) बनाये जाते थे, उन घरों के फ़र्श और दीवारें उस मिट्टी से लीपी जाती थी जो तुलसी के पौधों के नीचे से ली गई होती थी। यह इसलिए किया जाता था कि रोगों के कीटाणु उस फर्श पर न पनप सकें।

जिन रोगियों को घर से दूर नर्मदा या गंगा के तट पर रहकर स्वास्थ्य सुधारने की सुविधाएं प्राप्त नहीं हो सकती थी, वे तुलसीवनों में ही रहकर अपने स्वास्थ्य को सुधारते थे और उन्हें वैसा ही लाभ होता था जैसा कि वे गंगा के तट पर रहकर प्राप्त करने की आशा रखते थे।

यह प्रथा एक समय इतना अधिक जोर पकड़ गई थी कि असाध्य रोगी भी तुलसी के जंगलों में रहते हुए अपने प्राण छोड़ने में गौरव समझने लगे थे, जैसेकि वे गंगातट पर या किसी तीर्थस्थान पर शरीर छोड़ रहे हों। लोगों में यह विश्वास घर कर गया था कि जो व्यक्ति, चाहे वह स्वस्थ हो या रोगी, तुलसी के जंगलों में रहता हुआ प्राण-त्याग करता है और मृत्यु के समय जिसके मुख में तलसीदल रख दिये जायं या मरते समय तुलसी की मञ्जरी दे दी जाए, तो वह सद्गति को प्राप्त करता है। इस विश्वास के अनुसार, जिन लोगों के मुख में तुलसी-दल डालना सम्भव न होता था, उनके मुख में तुलसीजल की बून्दें टपका दी जाती थी अथवा तुलसी के पत्तों को पानी में भिगोकर उन्ही पत्तों से उन्हे छींटे दे दिये जाते थे। रोगी के सिर और कानों पर भी तुलसीदल रख देने की प्रथा थी। मरते हुए व्यक्ति ने तुलसीकाष्ठमाला पहनी हुई है तो वह सद्गति को प्राप्त होता था।

घरों में तुलसी के नीचे की मिट्टी सम्भाल कर रखी जाती

थी और यदि तुलसी उस समय प्राप्त न हो सकती हो तो इस मिट्टी को चन्दन की तरह माथे पर लेप कर देने से भी मरने वाले की सद्गति समझी जाती थी।

इन धार्मिक विश्वासों का एक विज्ञानसम्मत आधार है। रोगी के पास की बुरी तथा गन्दी गन्ध को तुलसी हटाती है और सड़ांद के कारण पैदा हुई दूषित अवस्थाओं को रोकती है। मलय पेनिन्सुला के निवासी कब्रों पर तुलसी के पत्ते चढ़ाते है जिससे परलोक में गये हुओं को शान्ति मिले।●

७/ विषों की चिकित्सा में

चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन आचार्यों ने, भावमिश्र, नित्यनाथ आदि मध्यकालीन विद्वानों ने और वापट, रौबर्ट्स आदि कुछ आधुनिक चिकित्सकों ने तुलसी के प्रत्येक भाग को सर्पविष में उपयोगी बताया है। चरकसंहिता के विषचिकित्सा अध्याय में इसका कई स्थानों पर उल्लेख आता है। इसे जन्तुघ्न, कृमिघ्न तथा विषघ्न गुण दिये जाते हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सकों ने इसे सामान्यतया सब प्रकार के विषों में और विशेषकर सर्पविष में उपयोगी पाया है।

चरक बताते हैं कि तुलसी, काकतिन्दु, इन्द्रायण, पुनर्नवा, मकोय और सिरस के बीजों को पीसकर सांप के डंसे हुए को पिला दें, उसकी नाक में छोड़ दें और डंसी हुई जगह पर लेप कर दें। वाग्भट के मत में इस योग में तुलसी की मञ्जरियां डालनी चाहिएं। मकोय की जगह वे जंगली अंजीर लेते हैं। तुलसी, जटामांसी, केसर, तेजपत्र, दालचीनी, हल्दी, तगर, लाल-चन्दन, शुद्ध मैनसिल और नखी को इकट्ठा पानी में पीस लें। पिलाने, नाक में डालने और आंखों में आंजने से यह विष को नष्ट करता है और सोज को उतारता है, चाहे वह किसी भी जाति का सांप काटने से पैदा हुई हो। विष सिर में पहुंच गया हो तो बुद्धिमान् वैद्य को चाहिए कि वह कालीतुलसी की जड़ के चूर्ण की नुस्वार दे। तुलसी के बीज, देवदार, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, हल्दी, कनेर, करंज के बीज की गिरी और नीम को

बकरी के मूत्र से घुटाई करके सुखा लें। विष के असर से दीखना बन्द हो गया हो और आंखें पथरा गई हों तो आंजना चाहिए। तुलसी, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी और कूठ को गोपित्त के साथ रगड़कर गोलियां बना लें। विषाक्रान्त पुरुष मरे हुए के सदृश भी हो गया हो तो इन गोलियों के देने से होश में आ जाता है।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित विषनाशक योगों में भी चरक ने इसे बरता है—मृतसंजीवन अगद, महागन्धहस्ती अगद, क्षारागद, अमृत घृत और परम अगद।

सुश्रुत ने ऋषभागद, महासुगन्धी अगद और मण्डली विषहर अगद में तुलसी को विषनाश के लिए प्रयोग किया है।

वाग्भट ने पत्तों को मण्डलि सांप के विष में और फूलों को सब सांपों के विष को उतारने के योगों में पिलाने, नाक में डालने और आंखों में आंजने के लिए लिखा है।

भावमिश्र ने मृत्युपाशच्छेदि घृत में, नित्यनाथ ने मृत्युपाशापह घृत में, योगरत्नाकर में मृत्युच्छेदिघृत में और दत्तराम चौबे ने नक्तमालाद्यञ्जन में अन्य द्रव्यों के साथ इसे सर्पविषों में उपयोग किया है।

रौबर्ट्स ने लिखा है कि (१) तुलसी मूल को पानी या स्त्रीदुग्ध के साथ रगड़कर सर्पविष में मूर्च्छा, तन्द्रा आदि को दूर करने के लिए आंखों में आंजते है और नाक में छोड़ते हैं। (२) पत्तों और मूल के ताजे रस को एक-दो चम्मच की मात्रा में सर्पदंश में पिलाएं। (३) मूल और पत्तों को सोलह गुने पानी में काढ़ा बनाकर ३० से ११५ मिलीलिटर तक पिला दें।

महाकोशल में गोंड आदि जंगली जातियां फनियर के काटने पर विष उतारने के लिए तुलसी का प्रयोग करती हैं। इसकी साधारण विधि यह है कि ताजे या सूखे पत्तों को रगड़कर मक्खन में मिलाकर डंसे हुए स्थान पर लेप कर दें। विष के कारण जब

लेप का रंग काला पड़ जाय तो उसे उतार दें और नया लेप लगा दें। जबतक लेप का रंग बदलता जाय तबतक इसी प्रकार करते रहें। इस तरह दंशस्थान से सारा विष तुलसी के पत्तों में खींच लिया जाता है और रोगी ठीक हो जाता है।

एक लेखक ने बताया है कि सांप काटने के बाद तुरन्त एक-दो मुट्ठी भर तुलसी के पत्ते खिला देने चाहिएं और उसके ही साथ तुलसी जड़ को मक्खन में घिसकर दंशस्थान पर लेप करना चाहिए। लेप के प्रयोग में वही निर्देश दिये जाते हैं जो पहले लेप के बारे में।

एक चिकित्सक का अनुभव है कि सर्पविष में पत्तों का स्वरस बार-बार पिलाते रहने से और मञ्जरी तथा जड़ों का लेप दंशस्थान पर बार-बार करने से सांप का विष नष्ट हो जाता है। आदमी बेहोश हो तो कान, नाक और आंखों में रस टपकाना चाहिए।

अक्टूबर १६२६ के 'मॉडर्न रिव्यू' में सर्पदंश की एक घटना छपी थी, जिसमें तुलसी के उपचार से आराम आ गया था। चिकित्सक के पहुचने से पहले रोगी बेहोश हो चुका था। उसे सांप काटे आठ घण्टे बीत चुके थे। तुलसी को कूटकर निकाले रस को पहले रोगी के मस्तक, कपाल और छाती पर खूब मला गया और केले के तने को कूटकर निकाला हुआ रस पन्द्रह मिलिलिटर की मात्रा में पिला दिया गया। हर पांच या दस मिनट बाद यह तबतक दिया जाता रहा जबतक वह होश में नहीं आ गया। होश आने में छः-सात घण्टे लग गये थे। तब दंशस्थान पर चीरे दिये गए। एक मुर्गी के बच्चे की गुदा के आस-पास के पंख साफकरके उस पर चाकू से कुछ चीरे देकर दंशस्थान पर जोर से चिपका दिया। तीन-चार मिनट में मुर्गी का बच्चा विष के प्रभाव से मर गया। इसके बाद क्रमशः चार बच्चे और

इसी तरह मर गये। छठा बच्चा नहीं मरा, जिससे समझ लिया गया कि रुग्णा सर्पविष से उन्मुक्त हो गई है।

इस पर यह पत्र टिप्पणी देता है कि मुर्गी वाला प्रयोग सदा सम्भव न हो और उसमें हिंसा की भावना मालूम पड़े तो केवल तुलसी और केले के रस को देते रहने से भी बहुत उत्तम परिणाम दीखते हैं। रोगी बेहोश हो, उसमें जीवन के लक्षण शेष न रह गये हों और उसके स्वस्थ होने की कोई आशा न रही हो, तब भी उसके शरीर पर तुलसी के रस की मालिश करने से और केले का रस मुंह में टपकाते रहने से कभी-कभी आशा के विपरीत भी रोगी की जान बच जाती है।

फनियर और मण्डली के विषों को नष्ट करने में प्रभावकारी औषध की खोज करने के लिए डॉक्टर म्हस्कर और कायस ने हाफ़किन इंस्टिट्यूट में जो परीक्षण किये हैं, उनमें इन परिशीलकों ने तुलसी के पत्तों, मञ्जरियों और जड़ों का प्रयोग करके देखा है। अपने परीक्षणों में इन्होंने कुत्ते को (१) तुलसीदल और मूल का ताजा रस चार ग्राम की मात्रा में पिलाया था। और (२) पत्तों तथा जड़ का काढ़ा भी इसी परिमाण में दिया था।

इन अन्वेषकों की सम्मति है कि तुलसी में सर्पविषनाशक, विषरोधक या उत्पन्न लक्षणों को दूर करने की क्षमता नहीं है। इसलिए जिन दंशों में घातक मात्रा में विष अन्दर पहुंचा दिया गया है, वहां तुलसी से इलाज करके रोगी के मरने की सम्भावनाएं न बढ़ाकर तुरंत ही सर्पविषनाशक प्रतिविष (एण्टिविनीन) शरीर के अन्दर पहुंचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

इन परिशीलकों के सुव्यवस्थित परीक्षणों में गलती की [illegible]

[illegible]

आशुघाती चीज का मुकाबला करने के लिए बहुत तुच्छ प्रतीत

होती हैं। ये कहते हैं कि बड़ी-बड़ी मात्राओं में और बार-बार तुलसी का अन्तः तथा बाह्य प्रयोग करने से ही सर्पदंश में लाभ प्राप्त करने की आशा रखनी चाहिए।

दूसरे जीवों के विष में—सांप के अतिरिक्त चूहा, मकड़ी, बिच्छू, ततय्या आदि अनेक प्रकार के कीड़ों के काटने पर विष उतारने के लिए तुलसी का उपयोग किया जाता है। हरे पत्तों को उस स्थान पर मसल देना चाहिए। डंक वाले कीड़ों का डंक मांस में टूट गया हो तो उसे पहले सुई से निकाल देना चाहिए।

ताजी जड़ों को पानी में घिसकर बनाये लेप को भूण्ड तथा मधुमक्खियों के डकों पर और दूसरे कीड़ों के तथा जोकों के काटने पर लगाते हैं। ताज़ी जड़ सदा सुलभ न हो तो उसे छाया में सुखाकर रख लें और ज़रूरत पड़ने पर तुलसी के हरे पत्तों के रस में घिसकर लेप कर लें। इससे विष उसी स्थान पर निर्वीर्य हो जायगा और वेदना शान्त हो जायगी। ताजी जड़ों, तनों और पत्तों को पीसकर मच्छरों के काटने पर मलते हैं। चरक, सुश्रुत, वाग्भट, रसरत्नाकर, वैद्यविनोद, भैषज्यरत्नावली और चक्रदत्त ने पौधे का प्रत्येक भाग बिच्छू के डंक मारने पर प्रयोग किया है।

कानखजूरे के विष में तुलसी, सज्जीखार, बकरी की मींगनियों की राख तथा यवतिक्ता को शराब में मिलाकर पिलाना और लेप करना चाहिए। तुलसी के रस में हरताल, नीला कमल और मैनसिल को बहुत-सी भावनाएं देकर सुखाए चूर्ण को तुलसी के रस में घोलकर पिलाने से चूहे का बहुत तेज़ विष भी नष्ट हो जाता है।

राजस्थान में एक प्रकार का लम्बा कीड़ा नाहरु मनुष्यों के शरीरों में प्रविष्ट होकर बहुत कष्ट दिया करता है। इसे निकालने के लिए नाहरु के मुंह पर और सोज वाली जगह पर

जड़ को घिसकर लेप करते हैं। थोड़ी ही देर में पांच-सात सेण्टीमीटर नाहरु निकल आता है। बाहर निकले हुए नाहरु को बांधकर फिर उसी प्रकार लेप करें तो दो-तीन दिन में ही सारा नाहरु बाहर निकल आता है और सूजन कम हो जाती है। बाद में दो-तीन दिन लेप करते रहने से रोग बिलकुल निर्मूल हो जाता है।

फोड़े—पत्तों के क्वाथ या फाण्ट से फोड़ों और जख्मों को धोना लाभदायक होता है। जिन घावों में कीड़े पड़ गये हों, उन पर सूखे पत्तों का बारीक चूर्ण छिड़कने से कीड़े मर जाते हैं। ताजे पत्तों का रस या पञ्चाङ्ग का तेज काढ़ा भी कीड़ों को जख्मों पर से हटाने और उन्हें मारने में अच्छा काम करता है।

त्वचा के रोग—हरे पत्तों को कूटकर निचोड़ा हुआ ताजा रस दाद और त्वचा के रोगों में त्वचा पर लगाया जाता है। पत्तों को निम्बूरस के साथ पीसकर दाद पर लेप किया जाता है। तुलसी के २३० ग्राम ताजे पत्तों को सिलबट्टे पर पीस कर लुगदी बना लें। इसे चार किलोग्राम तुलसीस्वरस और दो किलोग्राम तेल के अन्दर जलीय भाग उड़ने तक हलकी आग पर पकाएं। यह तेल त्वचा के रोगों में मला जाता है।

तुलसीमूल को थोड़ी-सी सोंठ के साथ मिला कर सुबह गरम पानी के साथ कुष्ठ में खिलाते हैं। वातरक्त नामक कुष्ठ के एक रोगी की उंगलियां गल चुकी थीं और चेहरा कुरूप हो गया था। एक संन्यासी ने एक साल तक उसे तुलसी का रस पिलाकर रोग से छुटकारा दिलाया था। जय कृष्ण इन्द्रजी सरीखे विश्वसनीय लेखक ने इसे स्वयं देखा था। पावेल्ल ने भी लिखा है कि खून को साफ़ करने के लिए तुलसी का प्रयोग किया जाता है। खुजली, फोड़े, फुन्सी, त्वचा पर चकत्ते पड़ जाना

और अनेक प्रकार के कोढ़ों में तुलसी का वाह्य प्रयोग करने से चरक ने लाभ देखा है।

शरीर के ऊपर सफेद दाग पड़ जाना, मुंह पर कीलें निकलने से चेहरे का कुरूप हो जाना, और झाईं आदि रोगों में तुलसी का रस लाभ करता है। तांबे के बरतन मे एक दिन तक निम्बू का रस पड़ा रहने दें। फिर उसमें उतना ही काली तुलसी का रस और काली कसौदी का रस डालकर धूप में पड़ा रहने देकर गाढ़ा होने दें। इस गाढ़े लेप को अच्छी तरह मिलाकर उपर्युक्त रोगों पर लगाते हैं। लगातार लगाते रहने से सफ़ेद दाग भी मिट जाते हैं। तुलसी के पत्तों को पीसकर उबटन करने से चेहरे की कान्ति बढ़ती है।

कान, दांत और आंख के रोग—पत्तों का रस हलका गरम करके कान में दो-तीन बून्द डालने से कान के दर्द को शान्त करता है। पीप बहते हुए और दुर्गन्ध वाले कानों में भी इसका उपयोग होता है।

दांत के दर्द में तुलसी के पत्तों और कालीमिर्च को रगड़कर बनाई गोली दांत में रखने से आराम आ जाता है।

तुलसी के स्वरस को आंखों में आंजने से आंखों के रोग नष्ट हो जाते हैं। आंखें लाल होने में स्वरस को शहद के साथ मिलाकर नेत्र बिन्दु के रूप में बरतने से आराम आ जाता है। कश्यप ने आंखों के रोगों की चिकित्सा के प्रकरण में तुलसी का अनेक जगहों पर प्रयोग किया है। कैथ, वटजी और तुलसी के पत्तों को बकरी के दूध में पीसकर निकाले रस को वे आंखों के रोगों में डालते हैं। वे कहते हैं कि भांगरा, नील, तुलसी, सफ़ेद सरसों और हल्दी के समान भाग कल्क को आंख पर लेप करने से आंख के रोगों में वेदना को यह बहुत जल्दी खींच लेता है।

तुलसी के विरोधी—सनत्कुमार संहिता में भास्कर बताते

हैं कि कार्तिक महीने में तुलसी के साथ पान नहीं खाया जाता। अनजाने भी खाने वाला दुःख पाता है और समाज में उसकी प्रतिष्ठा जाती रहती है। चरक के मत में तुलसी खाकर दूध नही पीना चाहिए क्योंकि इससे त्वचा के रोग होने का भय रहता है।

होम्योपैथी में तुलसी का प्रयोग—होम्योपथी की पत्रिकाओं में पिछले कुछ सालों से कभी-कभी तुलसी पर लेख प्रकाशित हो रहे हैं। तुलसी से बनी होम्योपैथिक औषध को इस पद्धति से चिकित्सा करने वाले अनेक डॉक्टरों ने सफल परिणामों के साथ बरत कर अपने अनुभवों को समय-समय पर प्रकाशित किया है। ये रिपोर्टें बहुत उत्साहजनक हैं और आशा दिलाती हैं कि यह औषध भी होम्योपैथिक मैटीरिया मेडिका में 'प्रूव्ड' ओषधियों के अन्दर सम्मिलित कर ली जायगी।

बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'दि हनीमैनियम ग्लीनिंग्स' के अप्रैल १९३६ के अंक में डॉक्टर शरतचन्द्र घोष, एम० डी० का तुलसी पर एक बड़ा लेख छपा था। होम्योपैथिक मात्राओं में अन्तःप्रयोग करने से रोगों के कई बड़े समूहों को नष्ट करने में तुलसी अत्यन्त प्रभावकारी औषध है। शरीर के प्रत्येक सस्थान और प्रत्येक अवयव पर इसका सूक्ष्म आध्यात्मिक कार्य भी उन्होंने विस्तार से दिखाया है। अपने लेख में उन्होने बंगाल के कुछ अन्य होम्योपैथों की ओर भी संकेत किया है जो उनके पर्यवेक्षणों को पुष्ट करते हैं। मस्तिष्क, आंख, कान, मुख, चेहरा, गला, आमाशय, आंतें, पेट, छाती, मूत्र, त्वचा आदि के बहुत-से रोगों में इन चिकित्सकों ने तुलसी को लाभदायक पाया है। बच्चों के ज्वरों में, दन्तोद्गम के ज्वर में, अतिसार में और पेट के कीड़ों में वे इसे देते हैं। इन्फ्लुएन्जा, निमोनिया, टाइफ़ायड, आदि में वे इस का सफलता से प्रयोग कर रहे हैं। •


न्याज़बो

पद्म पुराण के अन्तर्गत कार्तिक माहात्म्य की एक कथा के अनुसार वृन्दा के भस्म हो जाने पर विष्णु ने जगत् का संहार करना शुरू किया। तब, उन्हें प्रसन्न करने के लिए लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती के दिये हुए तीन बीजों को देवो ने विष्णु के पास बो दिया। पार्वती के बीज से तुलसी पैदा हुई। लक्ष्मी ने ईर्ष्या से बीज बोया था, इसलिए उससे पैदा हुआ पौधा निन्दनीय समझा जाने लगा और इसी से उसे बर्बरी कहने लगे। न्याज़बो को संस्कृत में बर्बरी कहते हैं।

न्याजबो और तुलसी दोनों ओसिमुम गण के पौधे हैं। हिन्दू लोग न्याजबो को धार्मिक कृत्यों में महत्व नहीं देते। भारतीय मुसलमान और बनि इसराइल चिरकाल से इसे सांस्कृतिक महत्व का पौधा समझते हैं। वे इसे उसी श्रद्धा और आदर से देखते हैं जैसे कि हिन्दू लोग तुलसी को। विवाहोत्सव में, दुःख के अवसरों में और सामाजिक कार्यों में न्याजबो की शाखाएं रखी जाती है। वे लोग घरों में और मजारों पर इस पौधे (ओसिमुम पिलोसुम वेल वेसिलिकुम) को रोपते हैं।

विविध भाषाओं में नाम

हिन्दी	बबरी, सब्जा, न्याजबो, बबुई तुलसी।
संस्कृत	बर्बरी।
पंजाबी	बबरी, नियाज़ बो।
कश्मीरी	हज़्बू।
मराठी	सब्जा।
बंगाली	बबुई तुलसी।
उड़िया	धाल तुलसी।
सन्थाली	भरबरी

सिन्धी	सब्भी।
तेलगू	भू तुलसी।
मलयालम	तिरु निश्र्, राम तुलसो।
वर्मी	काला पिंगेन।
अरबी	शाहसफ़रम।
फ़ारसी	फिरञ्जमुश्क।
फ्रेंच	वेसिलिक कल्टिव।
जर्मन	बेसिलीन-क्रॉट।
अंगरेजी	स्वीट वेसिल।
लैटिन	ओसिमुम वासिलिकुम लिन.।

मलयी नाम—मलाया में इसका सामान्य नाम यद्यपि दाउन रुकु है परन्तु भारत की तरह वहां भी भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इसके नाम अलग-अलग हो गये है। कुआला कांगसार (पिरा, प्रान्त की राजधानी) में इसका नाम दाऊन रुकु है। तेलो आन्सन में इसे दाउन रुकु-रुकु या केमांगी, पीकन में रुकु पागंग और करक में मेयाली कहते हैं।

प्राप्ति स्थान—यह पौधा भारत के गरम प्रदेशों में सब जगह उगता है। पशिया तथा सिन्ध में और पंजाब के कम ऊंचे पहाड़ों पर निसर्ग में स्वतः उगता है। सम्भवतः अफ्रीका में भी यह प्राकृतिक है। बिलोचिस्तान में मिलता है। गंगा के ऊपर के प्रदेशों और शिवालक तथा हिमालय के निचले प्रदेश के उद्यानों में बहुत उगाया जाता है और कहीं-कही जंगली रूप में उगा हुआ मिलता है। बंगाल में बोया जाता है। पंजाब से लेकर त्रावनकोर तक बगीचों में बोया जाता है। भारत, श्रीलंका और ब्रह्मदेश के अधिक हिस्सों में और पूर्वीय गोलार्द्ध के उष्ण प्रदेशों में तथा पॉलिनेशिया में भी सामान्यतया बोया जाता है।

वानस्पतिक वर्णन—यह लामिआसी नैसर्गिक वर्ग का पौधा है। सीधा, मृदु, बहुत शाखाओं वाला, साठ से नब्बे सेण्टीमीटर ऊंचा, स्निग्ध, निर्लोम या थोड़ा-बहुत तूलरोमश, सुगन्धित, वार्षिक पौधा है। कभी-कभी यह आकार-प्रकार में खूब बढ़ जाता है और स्पष्ट रूप से झाड़ी बन जाता है। तने और शाखाओं का रंग हरा या कभी-कभी जामनी रंग की आभा लिये हुए होता है। ऊपर के शाखाशिखर प्रायः जामनी-से रंग के होते हैं।

पत्ते २.५० से ७.५० सेण्टीमीटर लम्बे, व्यस्तलट्वाकार, तीक्ष्ण, अखण्डित अथवा थोड़े-बहुत दन्दानेदार, ग्रन्थियों के बहुत अधिक निशानों से चिन्हित और मीठी प्रिय गन्ध वाले होते हैं। पत्रवृन्त १.२५ से २.२५० सेण्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। वृन्त किसलयों में रहता है।

फूल बहुत सुगन्धित और गोल गुच्छों में लगते हैं। एक गोले में छह से दस तक फूल लगे रहते हैं। पुष्पच्छद (केलिक्स) बहुत छोटे वृन्त पर; निचले दो ओष्ठ ऊपर के गोल ओष्ठ की अपेक्षा अधिक लम्बे, निचलों की अपेक्षा बाहर के ओष्ठ छोटे। पुष्पदल समूह (करोला) १ से १.२५ सेण्टीमीटर लम्बा, सफ़ेद-लाल या जामनी आभा लिये हुए, परागदण्ड थोड़े-से बाहर निकले हुए, ऊपर के दण्ड आधार पर खण्डित होते हैं।

बीज छोटे, अण्डाकृति, एक पृष्ठ पर ज़रा से उभरे हुए, दूसरा पृष्ठ चपटा, नोक खुण्डी, आधारीय चिह्न छोटा, रंग में ये गूढ़े काले होते हैं। इनमें कोई गन्ध नहीं होती परन्तु स्वाद तैलीय और कुछ चरपरा-सा होता है।

भेद—फूलों और शाखाओं के रंग तथा रोओं की कमी और अधिकता के कारण इसके अनेक भेद होते हैं। टिपिकल समझे जाने वाले पौधे के पत्ते सर्वथा चिकने हरे और सफ़ेद होते हैं।

परीक्षणों से मालूम हुआ है कि खिलने से पूर्व ही पुष्पकलि-

काएं तोड़ दिये गए पौधों में उन पौधों की अपेक्षा उड़नशील तेल काफ़ी अधिक मात्रा में निकलता है जिन्हें स्वाभाविक रूप से बढ़ने दिया जाता है। इस अधिक बढ़ जाने वाले तेल का परिमाण लगभग बयासी प्रतिशत है। पौधे का भार भी प्रायः उनतालीस प्रतिशत बढ़ गया था। इससे यह ज्ञात होता है कि सामान्य अवस्था की अपेक्षा फूलने के साथ पौधे में उड़नशील सुगन्धित क्रियाशील तत्त्व अधिक मात्रा में रहता है। गर्भाधान और बीज के बनने में यह सुगन्धित तत्त्व व्यय हो जाता है। इसलिए फूल खिलने के बाद ही पौधे को इकट्ठा करना अधिक उपयोगी होता है।

पत्ते, फूल की मंजरियां और बीज पौधे के सभी भाग दवा में काम आते हैं। फ्रांस की भेषज संहिता (फ़ार्माकोपिया) में न्याज़बो अधिकृत है। फूल निकलने के बाद इस पौधे को तोड़ना चाहिए और अच्छी तरह सुखा कर नमी रहित सूखे स्थान पर रखना चाहिए। सुखाने से सुगन्ध बढ़ जाती है। जड़ों के अतिरिक्त पौधे के सभी भागों में सुगन्ध होती है और पत्तों तथा फूलों में अधिक होती है। यह सुगन्ध एक उड़नशील तेल के कारण होती है। इसे प्राप्त करने के लिए फूलदार फुनगियों को आसुत करना सस्ता पड़ता है।

हरी फुनगियों के भार का ०.२५ से ०.५४ प्रतिशत तेल प्राप्त होता है। केवल पत्तों से ०.१६ से ०.३४ प्रतिशत तक और केवल फूलों से ०.३१ से ०.६० प्रतिशत तक और कभी-कभी इससे दुगना भी तेल मिलता है। पत्तों के तेल की सुगन्ध अच्छी होती है और उसे साबुन की सुगन्ध तैयार करने के काम में प्रयुक्त किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश में न्याज़बो के उड़नशील सुगन्धित तेल के उत्पादन में काफ़ी प्रगति की सम्भावना है।

इस तेल के भौतिक और रासायनिक गुण इस प्रकार हैं : २५° शतांश पर आपेक्षिक घनत्व ०.९६७८-०.९५६६; २५° शतांश पर रिफ्रेक्टिव इण्डेक्स १.५१३०-१.५२६४; औप्टिकल रोटेशन ५° से १०°; अधिकतम अम्ल अर्हा (एसिड वैल्यू) ५; ८० प्रतिशत एल्कोहल में (आयतन से) घुलन शीलता १:१।

इस तेल में मुख्यतया ये पदार्थ पाए जाते हैं : मिथाइल सिन्नेमेट ४५-७५ प्रतिशत, लिनेलूल के रूप में टरपीन एल्कोहल २५-३५ प्रतिशत, मिथाइल चैविकोल १०-२५ प्रतिशत, ओसिमीन ४-६ प्रतिशत। इस तेल में कपूर नहीं होता।

भोजनों में उपयोग—पौधे में मसाले की-सी तीव्र गन्ध होती है। उत्तरप्रदेश में पत्तों की चटनी बनाते है। पत्तों और छोटे-छोटे कोमल शाखा-शिखरों का स्वाद चरपरा, मसाले का-सा, ठण्डा, लुआबदार और जरा-सा नमकीन होता है। इनकी गन्ध कुछ-कुछ लौंग जैसी होती है। सूखे पत्ते लौंग के प्रतिनिधि रूप में वरते जाते है। भारत में कई स्थानों पर ये सुखाये जाकर मसाले के रूप में इस्तेमाल किये जाते है।

भारत में यह पौधा सदियों से मसालों में वरता जा रहा है। इंगलैण्ड में यह अपनी मसाले की-सी सुगन्ध के कारण बहुत देर से लोकप्रिय है। तरी वाली सब्जियों और चटनी-मसालों में पत्ते डाले जाते हैं। फ्रेंच रसोई में न्याजबो बहुत पसन्द की जाती है। सुनहरी पीले रंग का उड़नशील तेल सुगन्धों (पर्फ़्यूमरी) में और अनेक प्रकार के पेयों में काम आता है।

चिकित्सा में उपयोग—हकीमों के चार तुख्मों में एक वर्बरी के बीज हैं। इन्हें तुख्मे रेहां कहते हैं। बंगाल में इन्हें तोकमारी कहते हैं। यह शब्द तुख्मे रेहां का विगड़ा हुआ रूप हैं।

चिरस्थायी मलबन्ध में शर्बत के साथ बीज खिलाये जाते हैं। इनका फाण्ट पुरानी कब्ज़ में लाभ करता है। तेज़ दस्ता-

कर दवा देने के बाद आंतों में क्षोभ को शान्त करने के लिए बीजों को ईसबगोल की तरह शर्बत से फांकते हैं। प्रवाहिका (डिसेण्ट्री) और अतिसार में बीज लाभदायक होते हैं। बड़ों को चार ग्राम से आठ ग्राम तक शर्बत के साथ या खाण्ड मिलाकर पानी के साथ फंका देने में बहुत लाभ होता है। बीजों के लेने की एक विधि यह है कि इन्हें थोड़े-से पानी में भिगो छोड़ते हैं। भिगोने से ये फूलकर एक लेसदार पदार्थ में बन जाते हैं। इसे बीजों का लुआब या शीतनिर्यास कहते हैं। इसमें खाण्ड मिलाकर उपर्युक्त अवस्थाओं में खिलाते हैं। पुरानी पेचिश (डिसेण्ट्री) में बीजों के चूर्ण को बबूल की गोंद के साथ गुलाब के अर्क में लुआब बनाकर खिलाते हैं या बीजों का फाण्ट बनाकर देते हैं। अनाम में शीतनिर्यास वमन और अतिसार को दूर करने के लिए दिया जाता है। यह मुख की दुर्गन्ध को भी दूर करता है।

पत्तों का रस पेट के कीड़ों को मारता है। अजीर्ण तथा उदरशूल में और पेट के कीड़ों को मारने के लिए स्वरस पिलाते हैं। अफ़ारे में देने से पेट की वायु निकल जाती है जिससे रोगी को सांस लेने में सुविधा हो जाती है। अग्निदीपन के लिए फूलों का भी प्रयोग किया जाता है। बीजों का फाण्ट और कषाय बदहज़मी और नये तथा पुराने अतिसार की अच्छी दवा है। तीस ग्राम ताजे पत्तों में तीस ग्राम अदरक या सोंठ मिलाकर अच्छी तरह पीसकर इसकी चने के बराबर गोलियां बनाएं। प्रातः और सायकाल पानी के साथ दो गोलियां प्रतिदिन लेना आंतों की पुरानी शिकायतों के लिए उत्तम औषध है।

बवासीर—भीतरी बवासीर में बीजों का फाण्ट पिलाने से लाभ होता है। शर्बत के साथ बीजों को खूनी बवासीर में और

अभ्यन्तर अर्श में खिलाते हैं। मलवन्ध न रहने देने से ये मस्सों को उभरने का अवसर नहीं देते।

बच्चों के रोग—बच्चों की आंतों की शिकायतों में जड़ इस्तेमाल की जाती है। बच्चों के मरोड़ों और दस्तों के लिए बीज लाभदायक समझे जाते हैं, खासकर दन्तोद्गम के अतिसार में। शिशुओं की पेचिश और अतिसार में २४०-३०० मिलिग्राम बीजों का चूर्ण शर्बत से देते हैं। कमज़ोर बच्चों के गले में हो जाने वाले छालों में पत्तों का गरम रस शहद के साथ दिया जाता है। बच्चों के गले के रोगों में और कुक्कुर खांसी में रस में शहद घोलकर पिलाते हैं। मलय में पत्तों को पीसकर निकाला हुआ रस बच्चों की खांसी में देते हैं। पंजाब में पत्तों और फूलों के रस की नुस्वार बच्चों को दी जाती है जिससे नाक और सिर के रोग न हों।

श्वास-संस्थान के रोग—बबंरी उत्तेजक, कफ निकालने वाली, पसीना लाने वाली और दीपक है। गायना में इसके पत्तों और शाखाओं का काढ़ा जुकाम और बुखार में दिया जाता है। मलाया में पत्तों को पीसकर पुल्टिस के रूप में जुकाम दूर करने के लिए सिर पर रखते हैं। खांसी में बीजों का लुआब खिलाने से लाभ होता है। यह खाण्ड मिलाकर भी दिया जा सकता है। पत्तों का ताजा रस खांसी में बहुत लाभ करता है। यह छाती में से कफ को निकालता है। कफप्रधान रोगों में बीजों का फाण्ट पिलाते हैं। पत्तों को उबालकर मलाया में खांसी दूर करने के लिए पिलाते हैं। मलयवासी इस प्रयोजन के लिए पत्तों को पान के साथ चबाना अधिक पसन्द करते हैं। सूखी खांसी में पत्तों के रस में शहद मिलाकर देने से बलगम आसानी से निकल जाती है और रोगी को शांति मिलती है। गले के रोगों में पत्तों के ताजे रस को गरम करके शहद के साथ चटाते हैं।

बुखारों में—बीजों का शर्बत बनाकर बुखारों में देते हैं। यह पेशाब खुलकर ले आता है। जरा-सी अदरक के साथ या सोंठ और कालीमिर्च के साथ पत्तों का रस बुखारों की शान्तावस्था में दिया जाता है। पौधे में पसीना लाने के गुण होते हैं। जिन बुखारों को चढ़े हुए कुछ दिन हो गये हों या ऐसे ज्वर, जिनमें शरीर टूटता हो और अंगों में वेदना होती हो, उनमें पत्तों के स्वरस को गरम करके पिलाने अथवा पंचांग के काढ़े को पिलाने से पसीना आ जाता है और रोगी को आराम मिलता है।

मूत्र के विकार—पानी में भिगोने से बीजों पर एक अर्द्ध-पारदर्शक लेस की तह आ जाती है। यह लुआबदार जेली अन्त:प्रयोग में लेपक और शीतल है, जलन को शान्त करती है, कठिनाई से आने वाले मूत्र की रुकावट को दूर करती है और पेशाब खुलकर लाती है। फूल भी उत्तेजक, मूत्रल और शान्तिदायक होते हैं।

सुजाक में शीतल बीजों का प्रयोग किया जाता है। एक चाय के चम्मच भर बीजों से बनाई जेली को एक गिलास पानी में घोलकर मिश्री से मीठा कर लें तो यह बहुत बढ़िया पेय बन जाता है जो प्रजनन और मूत्र-संस्थान के रोगों में, जैसे सुजाक और मूत्राशय शोथ में रोज पिलाया जाता है। वैद्य लोग बीजों का फाण्ट बनाकर पूयमेह और गुरदों के विकारों की चिकित्सा के लिए बहुधा इस्तेमाल कराते हैं।

प्रजनन-संस्थान के रोग—बर्बरी में वाजीकरण गुणों की बहुत प्रशंसा की जाती है। बीज वीर्य को गाढ़ा करते हैं और वीर्य के स्राव को रोकते हैं, जिस कारण स्तम्भक नुस्खों में वैद्यों और हकीमों द्वारा बहुत बरते जाते हैं। चार से ग्यारह ग्राम की मात्रा में बीजों का चूर्ण वाजीकरण के रूप में दिया जाता है। बीजों को कई बार पानी में भिगोकर खाते हैं। ये ठण्डे और

बहुत पौष्टिक होते हैं। पूर्वीय बंगाल के मुसलमान तो इन्हें पानी में भिगोकर ताजगी देने वाले शीतल पेय के रूप में बहुत पीते हैं। कनावार में इन्हें कभी-कभी रोटियों में पकाकर खाया जाता है। बीजों का शीतनिर्यास प्रसवोत्तरकालीन वेदनाओं को शान्त करता है।

पीड़ाओं में—वातनाड़ियों की शूलों में पत्तों का काढ़ा लाभदायक माना जाता है। जोड़ों के दर्दों में शीतनिर्यास खिलाया जाता है। मोच पर पत्तों का रस मलते हैं।

दाद और फोड़े-फुन्सी—दाद पर पत्तों का रस लगाने से बड़ा लाभ होता है। आक्रान्त भाग पर इसे दिन में कई बार लगाना चाहिए। दाद को नष्ट करने वाली कुछ दवाओं का यह रस आधार बन गया है।

रस का बाह्य प्रयोग फोड़े-फुन्सियों को ठीक करता है, घाव से पीप बहने को बन्द करता है और कृमियों को मारता है। जख्मों पर से कीड़ों को हटाने के लिए सूखे पत्तों का चूर्ण छिड़कते हैं। दूषित व्रणों और — लगाने वाले लेपों में इसके बीज प्रयुक्त होते हैं। — पल्टिस

किया जाता है। इससे स्थानिक संज्ञाहरण के साथ-साथ पराश्रयीहर और कृमिहर कार्य भी होता है जिससे रोग उत्पन्न करनेवाले कृमि निष्क्रिय हो जाते हैं और बाहर निकल जाते हैं। पत्तों के रस को नाक में टपकाने से नकसीर बन्द होती है।

कान के दर्द और ऊंचा सुनने में पत्तों का रस कान मे डालते हैं। आंख दुखने आने पर पत्तों का रस आंख में नेत्रबिन्दु की तरह डालने से आराम हो जाता है।

बिच्छू और सांप का विष—बिच्छू के डंक मारने पर दर्द को कम करने के लिए पत्तों का कल्क डंक वाले स्थान पर रखते हैं। सांप के काटने पर बीज मुख में रखकर चबाये जाते हैं। लुआब बन जाने पर आधे तो खा लेते हैं और शेष काटे हुए स्थान पर लेप कर देते हैं। डॉक्टर म्हस्कर के अनुसार चरकाचार्य सब विषों पर पत्तों के स्वरस का प्रयोग करने का निर्देश देते हैं। वापट पत्तों के रस को साठ मिलिलीटर की मात्रा में पिलाते हैं। यूनानी चिकित्सक भी इसका सर्पदंश में बहुत उपयोग करते हैं। डॉक्टर म्हस्कर और कायस् ने अपने परीक्षणों में पत्तों को पीसकर दष्टक्षत पर लेप किया, पत्तों के रस की कुछ बूंदें आंखों तथा नथुनों में टपकाईं, और पीने के लिए ग्यारह ग्राम रस दिया। इन महानुभावों द्वारा किये गए प्रयोगों के परिणाम नकारात्मक थे। इन्होंने पाया कि सर्पविष को उतारने में यह प्रभावहीन औषध है। ●



वन

वन तुलसी का पौधा असम, बंगाल और मध्यप्रदेश के दक्षिण में और श्रीलङ्का तक, भारत के मैदानों और नीचे पहाड़ों पर पाया जाता है। बगीचों के आसपास यह प्रायः जङ्गली या अर्द्ध जंगली अवस्था में बहुतायत से मिल जाता है। त्रावणकोर में फ़ालतू ज़मीनों में उग आता है। पंजाब के मैदानों मे सूखे प्रदेशों मे यह जंगली है और सम्भवतः निसर्ग में स्वतः उगता है। देहली के आसपास पहाड़ियों पर बहुतायत से उगा हुआ है।

जावा, पश्चिमीय एशिया, गरम अफ्रीका और मेडागास्कर के मैदानों में तथा ऊंचे पहाड़ों पर मिलता है। ब्राज़ील में बहुतायत से उगता है। अमेरिका में बोया जाता है। वहां यह बाहर से गया है, सम्भवतः अफ्रीका से गया हो।

विविध भाषाओं के नाम

हिन्दी अर्जक तुलसी, छोटी तुलसी, वन तुलसी।
संस्कृत अर्जका, मुखर्जिका, क्षुद्र तुलसी (छोटी तुलसी); उग्रगन्धा (तेज़ गन्ध वाली); गम्भीरा (गम्भीर रोगों की औषध)।
मराठी अजगन्धा।
की नाइ तुलसी।
प्र. गजम कारई।
बहुत प्रशारक तुलसी।
वीर्य के स्राव [illegible]
और हकीमों द्वारा [illegible]म, ओसिमुम अमेरिकेनुम, ओसिमुम
मात्रा में बीजों का च[illegible] नैसर्गिक वर्ग—लामिआसी।
बीजों को कई बार पानी [illegible] सम्भवतः बर्बरी (ओसिमम

बेसिलिकम लिन.) ही है, और सूखी अवस्थाओं में उगा होने से बर्बरी से भिन्न जाति का मालूम होने लगा है। इसके पत्ते और विशेषतः फूल बर्बरी से बहुत छोटे होते हैं। बर्बरी की तुलना में इस पर छोटे-छोटे रुई-के-से रोए अधिक घने छाये रहते हैं।

छोटा, सीधा, पैंतालीस से साठ सेण्टीमीटर ऊंचा, बहुत शाखाओं वाला पौधा है। इसमें सुमधुर गंध आती है। पत्तों के किनारे कटे हुए होते हैं। सफ़ेद रंग के फूल जून से मई तक खिलते रहते हैं। फूलों के चक्र पास-पास लगे होते हैं। एक चक्र में प्रायः छह फूल लगे होते हैं।

उपयोगी भाग—फूल, पत्ते, जड़ आदि पौधे का प्रत्येक भाग चिकित्सा में काम आता है।

उपयोग—बहुत तेज गन्ध के कारण कीड़े इससे दूर रहते हैं। उत्तर प्रदेश के गांवों में इसे कपड़ों में कीड़े न लगने के लिए रखते हैं। छाया मे इतना ही सुखाया जाता है कि कपड़ो पर पत्तों का दाग़ न लगे, और इतना अधिक भी न सूख जायं कि चूरमूर हो जायं।

त्वचा के रोग—चर्म-रोगों में ताजे पत्तों को पीसकर लेप करते हैं। त्वचा के पराश्रयी जीवाणुओं को यह मारता है। चरक की सम्मति में अर्जक खाकर दूध नहीं पीना चाहिए, क्योंकि इससे त्वचा के विकार होने का डर रहता है।

महास्रोतस् के रोग—अर्जक स्वादिष्ट, रुचिकारक और हृदय के लिए हितकर होता है। पित्त को व[illegible]
में जल का क्वाथ बनाकर देते हैं। पेचिश[illegible]
उपयोगी माना गया है। अर्जक के पत्ते, करंज[illegible]
नीम की छाल, अपामार्ग के बीज, गिलोय औ[illegible]
कर २४ ग्राम लें। ७६८ मिलिलीटर पानी[illegible]
पानी रहने तक पकाकर उतार लें। इस का[illegible]

होम्योपैथी में प्रयोग—होम्योपैथी में तुलसी की इस महत्वपूर्ण जाति अर्जक का सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले डॉक्टर मूर थे। उन्होंने देखा था कि ब्राजील में यह शिश्न, मूत्राशय और गुरदों के रोगों में रामबाण औषध के रूप में प्रयोग की जा रही है। उनके बाद बहुत-से सिद्धहस्त होम्योपैथ इसका उपयोग करते रहे। मूत्रसस्थान के रोगों से पीड़ित दो रोगियों को डॉक्टर क्लार्क ने इससे ठीक किया था। जनवरी १८९६ के ब्रिटिश होम्योपैथिक सोसायटी के जर्नल में उन्होंने इन रोगियों का वर्णन किया था। क्लार्क ने पी० सी० मजूमदार आदि के द्वारा ठीक किये कुछ अन्य रोगियों का भी उल्लेख किया है।

अनेक रोगियों पर यह मूत्रसंस्थान और प्रजनन-संस्थान के रोगों में विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है। केलिफोर्निया युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर डॉक्टर विलियम बोरिक ने अपने होम्योपैथिक मैटीरिया मेडिका में अनुभूत दवाओं में इसका वर्णन किया है। वे इसका प्रचलित नाम ब्राजीलिअन एल्फ़ावेका देते हैं। वे इसे गुरदों के विकारों में, मूत्राशय और लिंग के रोगों में बरतते हैं। यूरिक अम्ल में यह दी जाती है। मूत्र में लाल रग की रेत आना मुख्य लक्षण हैं, जिसमें यह बहुत लाभ करती हुई देखी गई है। जांघ की, और चूचुक की गिलटियों की सोज में, गुरदे के दर्द में और खासकर दाहिने तरफ के गुरदे के दर्द में तथा गुरदे में पथरी के लक्षण हों तब भी इसका प्रयोग करना चाहिए। मूत्र में अम्लीयता बहुत अधिक हो, यूरिक अम्ल के कीलाकार स्फटिक बन जाते हों, मूत्र गदला, गाढ़ा, पीप और खून मिला हुआ हो, इसमें पीसी हुई ईंट के समान लाल या पीले रंग का निक्षेप बैठ जाता हो, गन्ध कस्तूरी जैसी आती म, मूत्रवाहिनियों मे दर्द हो, गुरदे संकुचित हो गये हों तो अर्जक दीजा हिए।

केवल मनुष्य के ही कुछ रोगों में अजेंक को लाभ करते देखा गया है, जैसे गरमी अनुभव होने में और बायें अण्ड की सोज में। स्त्रियों की निम्नलिखित अवस्थाओं में इसका उपयोग होता है—भगशोथ में, भगोष्ठ की पीड़ा में, योनिभ्रंश में, चूचकों में जब किसी भी चीज के स्पर्श से वेदना होती हो, छाती भरी हुई और तनी हुई अनुभव होती हो, खुजली होती हो। यह छह से तीस शक्ति तक प्रयोग किया जाता है। ●

होम्योपैथी में प्रयोग—होम्योपैथी में तुलसी की इस महत्वपूर्ण जाति अर्जक का सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले डॉक्टर मूर थे। उन्होंने देखा था कि ब्राज़ील में यह शिश्न, मूत्राशय और गुरदों के रोगों में रामवाण औषध के रूप में प्रयोग की जा रही है। उनके बाद बहुत-से सिद्धहस्त होम्योपैथ इसका उपयोग करते रहे। मूत्रसस्थान के रोगों से पीड़ित दो रोगियों को डॉक्टर क्लार्क ने इससे ठीक किया था। जनवरी १८९६ के ब्रिटिश होम्योपैथिक सोसायटी के जर्नल में उन्होंने इन रोगियों का वर्णन किया था। क्लार्क ने पी० सी० मजूमदार आदि के द्वारा ठीक किये कुछ अन्य रोगियो का भी उल्लेख किया है।

अनेक रोगियों पर यह मूत्रसंस्थान और प्रजनन-संस्थान के रोगों में विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है। केलिफोर्निया युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर डॉक्टर विलियम बोरिक ने अपने होम्योपैथिक मैटीरिया मेडिका में अनुभूत दवाओं में इसका वर्णन किया है। वे इसका प्रचलित नाम ब्राज़ीलिअन एल्फ़ावेका देते हैं। वे इसे गुरदों के विकारों में, मूत्राशय और लिंग के रोगों में बरतते हैं। यूरिक अम्ल में यह दी जाती है। मूत्र में लाल रग की रेत आना मुख्य लक्षण हैं, जिसमें यह बहुत लाभ करती हुई देखी गई है। जांघ की, और चूचुक की गिलटियों की सोज में, गुरदे के दर्द में और खासकर दाहिने तरफ के गुरदे के दर्द में तथा गुरदे में पथरी के लक्षण हों तब भी इसका प्रयोग करना चाहिए। मूत्र में अम्लीयता बहुत अधिक हो, यूरिक अम्ल के कीलाकार स्फटिक बन जाते हों, मूत्र गदला, गाढ़ा, पीप और खून मिला हुआ हो, इसमें पीसी हुई ईंट के समान लाल या पीले रंग का निक्षेप बैठ जाता हो, गन्ध कस्तूरी जैसी आती म. मूत्रवाहिनियों में दर्द हो, गुरदे संकुचित हो गये हों तो अर्जक वीजा ‘हिए।

केवल मनुष्य के ही कुछ रोगों में अर्जक को लाभ करते देखा गया है, जैसे गरमी अनुभव होने में और बांयें अण्ड की सोज में। स्त्रियों की निम्नलिखित अवस्थाओं में इसका उपयोग होता है—भगशोथ में, भगोष्ठ की पीड़ा में, योनिभ्रंश में, चूचकों में जब किसी भी चीज के स्पर्श से वेदना होती हो, छाती भरी हुई और तनी हुई अनुभव होती हो, खुजली होती हो। यह छह से तीस शक्ति तक प्रयोग किया जाता है। ●

४/ राम तुलसी

विविध भाषाओं के नाम :

हिन्दी	राम तुलसी।
बंगाली	राम तुलसी।
संस्कृत	अजवला।
मराठी	रान तुलसु।
गुजराती	अवची बावची।
बम्बई	रान तुलसी, राम तुलसी।
तमिल	एलूमिच-चाम तोलशी।
दक्षिणी	राम तुलसी।
तेलगू	निम्न तुलसी, राम तुलसी।
मलयालम	कट्टू-टुट्टुवा।
अरबी	फ़रंजमिश्क।
फ़ारसी	पलंगमिश्क।
अंग्रेजी	अबी वेसिल।
फ्रेंच	वेसिलिक डे-सिलोन
लैटिन	**ओसिमुम** ग्राटीस्सिमुम लिन. **ओसिमुम** सोट्रो-मेट्रुम हैम **ओसिमुम रोबूस्टुम** हेयने.

प्राप्ति-स्थान—भारत में बंगाल, चिटागोंग (बंगलादेश), पूर्वीय नेपाल, दक्षिण के जलासन्न स्थान और श्रीलङ्का में बोया जाता है। पश्चिमी भारत में यह सामान्य रूप में मिल जाने

वाला जंगली पौधा कहा जाता है। परन्तु वहां इसके वस्तुतः प्राकृतिक होने में संदेह है। पंजाब में यह कम मिलता है। लाहौर में बोया जाता है। इसके उद्भव का मूल देश अनिश्चित है। श्रीलङ्का और दक्षिण समुद्र-द्वीपों में सम्भवतः प्रकृति में स्वयं उगता है।

वानस्पतिक वर्णन—पहले वर्णन की गई जातियों की तुलना में यह पौधा बड़ा और झाड़ीनुमा है। ६० सेण्टीमीटर से १.८० मीटर ऊंची इस झाड़ी की शाखाएं तूलरोमश, पत्ते खर और बड़े होते हैं। इस गण के सब पौधों की तुलना में इसके पत्तों में सब से अधिक सुगन्ध रहती है। पौधे का प्रत्येक भाग चिकित्सा में काम आता है। इसमें एक उड़नशील तेल, थाईमोल, यूजिनोल और मिथाइल चविकोल पाया जाता है।

जिन प्रदेशों में रामतुलसी अधिक मिलती है, वहां पर इसे तुलसी की तरह प्रयोग किया जाता है। यह उत्तेजक, दीपक, लेपक, मूत्रल और रुधिरस्राव को रोकने वाली है।

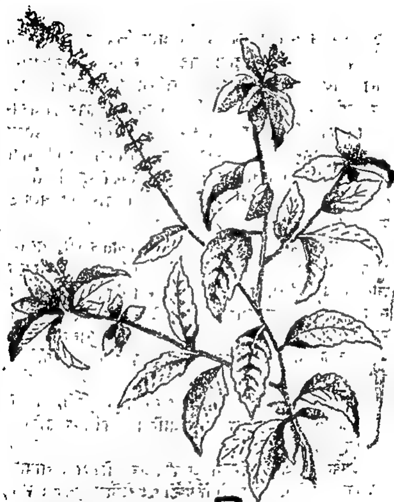
बच्चों के रोग—शिशुओं और बच्चों की उलटियों में पिसे हुए बीजों को शहद में चटाते हैं। पेट दर्द में पत्तों का रस पिलाने से आराम आ जाता है, यह दीपक तथा पाचक होता है और वायु के अनुलोमन का काम करता है। मन्दाग्नि, खांसी आदि में इसका बहुत व्यवहार होता है। खांसी के मिश्रणों में यह सामान्यतया कफनिस्सारक ओषधियों के साथ मिलाकर दी जाती है।

मूत्र तथा प्रजनन-संस्थान के रोग—पत्तों का काढ़ा वीर्य की निर्बलता में दिया जाता है। बीज पोषक पदार्थ के रूप में खाये जाते हैं। बीजों का फाण्ट पन्द्रह से तीस मिलिलीटर की मात्राओं में मूत्रविकारों में, जैसे पूयमेह में, कम तथा जलन से पेशाब आने

आदि में दिया जाता है। ऐसी अवस्थाओं में पत्तों के रस को चावलों के पानी में मिलाकर भी पिलाते हैं।

वायु के विकार—आमवात में पौधे की धूनी दी जाती है। आमवात और पक्षाघात में मॉरिशस में इसके काढ़े से रुग्ण भाग को धोते हैं और इसी की भाफ़ देते हैं। मेजर डी० आर० थॉमसन ने बीजों को पारदविषजन्य आमवात और पारदीय विष के लालास्राव में प्रयोग किया है। सिरदर्द और वातिक नाड़ियों के दर्दों में बीज खिलाये जाते हैं। सुगन्धित जड़ सिल पर घिसकर वेदनाहरों (पेन बाम) की तरह उपयोग की जाती है।

खटमल और सर्पविष—पंचाङ्ग को पीसकर रस निकाल लें। चारपाई के छिद्रों में इसे छोड़ देने से इसकी गन्ध पाकर खटमल भाग जाते हैं। डॉक्टर म्हस्कर के अनुसार वृन्दमाधव ने इसकी मंजरियों को दूसरे द्रव्यों के साथ सर्पविष में बरता है। म्हस्कर के प्रयोगों के अनुसार यह विष उतारने में कारगर नहीं है। ●



कपूर तुलसी

भारत में सदियों से पूजा-अर्चना और चिकित्सा में कपूर का प्रयोग किया जा रहा है। यह एक सुगन्धित और ज्वलनशील पदार्थ कपूर नामक वृक्ष के पत्तों को और उसकी लकड़ी तथा जड़ों को उबालकर प्राप्त किया जाता है। कपूर का मध्यमाकार वृक्ष चीन और जापान का मूल निवासी है। इसका लेटिन नाम सिन्नामोमम कैम्फोरा एफ० नीस० है। भारत सदा विदेशों से कपूर मंगाता रहा है। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान कपूर के आयात को गहरा धक्का लगा था और यह अत्यन्त दुर्लभ हो गया था।

तब हमारे वैज्ञानिकों ने कपूर के नये प्राकृतिक स्रोत तलाश करने शुरू किये। कपूर-तुलसी रोमिल शाखिकाओं वाली एक छोटी झाड़ी है जिसका मूल स्थान केन्या (पूर्वी अफ्रीका) है। सूडान और कुछ अन्य देशों में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान इससे कपूर निकालने के प्रयत्न किये गए थे। वन अनुसन्धानशाला, देहरादून के वैज्ञानिकों ने कपूर पैदा करने के लिए इस पौधे के बीज मंगाकर खेती करनी शुरू की।

हिन्दी में इसे कपूर तुलसी, संस्कृत में कर्पूर तुलसी, अंग्रेजी में कैम्फ़र वेसिल और लेटिन में ओसिमम किलिमेण्डशेरिकम गर्क कहते हैं।

इसके पत्ते अण्डाकार या आयताकार, नोकदार, आधार पर सकरे, गहरे दांतेदार, दोनों पृष्ठों पर रोमिल होते हैं। फूल चार से छह पुष्पित चक्रों में लम्बी रोमी सीखों पर लगते हैं। बीज अण्डाभ से अण्डाभ-आयताकार, काले से भूरे रंग के होते हैं।

कपूर तुलसी बीजों द्वारा आसानी से अनेक प्रकार की

भूमियों में उगाई जा सकती है, भले ही सिंचाई की जाने वाली भूमि हो या बेरानी।

उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, मैसूर, तमिलनाडु, केरल और जम्मू में की गई खेती से उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुए हैं। इन परीक्षणों में देखा गया कि यह पश्चिम बंगाल के मैदानों में अच्छा नहीं उगता, पर दार्जिलिंग की निचली पहाड़ियों पर बढ़िया पनपता है। पश्चिम बंगाल के कलिम्पोंग वन विभाग के रोंगो पहाड़ियों और सुकना में अब यह सफलतापूर्वक उगाया जा रहा है।

मैदानों में और ९०० मीटर की ऊंचाई तक पहाड़ियों पर भी यह खेती किया जा सकता है। एक बार पौधा भली-भांति जम जाये तो इससे कई बरस तक स्थूणांकुरण किया जा सकता है। पर्याप्त नमी हो तो पौधा काफ़ी ऊंचा तापमान सहन कर लेता है, लगभग-२ अंश शतांश से नीचे तापमान गिर जाये तो नहीं सह सकता। १२५ सेण्टीमीटर वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में यह अच्छा चलता है। वर्षा सुवितरित हो और भूमि के नीचे जल-स्तर ऊंचा हो तो इससे कम वर्षापात में भी पनप सकता है।

यह सभी प्रकार की भूमियों में उग आता है पर चिकनी मिट्टी को अधिक पसन्द करता है। उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र जैसी भारी भूमि जिसमें पानी जमा हो जाता है, इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम है।

ढोर और भेड़-बकरियां पौधे को नहीं चरते। इसकी जड़ें मिट्टी को बांधती है और भूक्षरण को रोकती हैं।

बीजों और टहनियों की कलमों से पौधे उगाये जा सकते हैं। मध्य मार्च के बाद नर्सरी की क्यारियों में बीज बोये जाते हैं। ७०-१४० ग्राम बीजों से एक हेक्टर या अधिक भूमि में बोने के लिए पौधे तैयार हो जाते हैं। पांच-सात सप्ताह की उम्र के पौधे

वरसात शुरू होने पर खेत में स्थानान्तरित किये जाते हैं। सिंचाई की जा सकती हो तो उससे पहले भी पौधे रोपे जा सकते हैं।

सामान्यतया खाद नहीं डाली जाती, पर खाद डालने से पत्तों की अधिक पैदावार मिलती है। पशुशाला की खाद, कम्पोस्ट, अमोनियम सल्फेट या खाद मिश्रण डालने की सलाह दी जाती है। पौधे रोपने से पहले खेत में जैविक खाद डाली जा सकती है। फूल आने से तीन-चार सप्ताह पहले रासायनिक खाद दी जा सकती है।

वर्धी प्रजनन के लिए पूर्ण विकसित पौधों से बीस सेण्टीमीटर लम्बी कलमें काटकर नर्सरी की क्यारियों में बोना चाहिए। सात से दस दिन में वे फूटने लगती हैं और चार से पांच सप्ताह में पुनर्रारोपण के योग्य हो जाती हैं। बीजों से तयार किये पौधों की अपेक्षा कलमों से तैयार किये गए पौधों से पत्ते जल्दी मिलने लगते हैं।

रोपने के चार से छह महीने बाद फ़सल काटने योग्य हो जाती है। मैदानों मे पौधों से एक साल में तीन फ़सलें काटी जाती हैं—अगस्त-सितम्बर, नवम्बर-दिसम्बर और मार्च-एप्रिल। पहली कटाई तब की जाती है, जब पौधा लगभग साठ सेण्टीमीटर ऊंचा हो जाय, फूलना शुरू कर दे और निचले पत्ते पीले पड़ने लगें। ठण्डी जगहों में कपूर तुलसी एकवर्षी पौधे के रूप मे बोई जाती है। वहां केवल दो वार कटाई की जाती है। पहली कटाई रोपने के दो-तीन महीने बाद और दूसरी कटाई पाला पड़ने से पहले। जमीन से ५-७.५ सेण्टीमीटर की ऊंचाई पर पौधे काटे जाते हैं। काटी हुई टहनियों की ढेरी लगा देते हैं। जब पत्ते मुरझाकर सूख जाते हैं तब उन्हें पीटकर अलग कर लिया जाता है और थैलों में भरकर रख लिया जाता है, अथवा खेतों के नीचे उनकी ढेरियां लगा दी जाती हैं। पत्ते रहित टह-

नियां तेल के आसवन में ईंधन के रूप मे काम आ जाती हैं। एक साल तक या कुछ अधिक समय तक रखने पर भी पत्तो में विद्यमान कपूर खराब नहीं होता। देहरादून में प्रतिवर्ष प्रति हेक्टर २,२०० किलोग्राम सूखे पत्ते प्राप्त हुए हैं। तीन कटाइयों में प्रति हेक्टर औसत ५,५०० किलोग्राम सूखे पत्ते मिले हैं।

स्थान, फ़सल काटने का मौसम और आसुत की जाने वाली सामग्री के अनुसार तेल और कपूर की उपलब्धि भिन्न-भिन्न होती है। पत्तों में कपूर और तेल का अधिकतम परिमाण होता है। उससे कम फूलों में। टहनियों में बहुत कम होता है। सीधे खेत में बीज बोकर तैयार हुए पौधो की अपेक्षा पुनरारोपित पौधों से लिये गए पत्तों में से अधिक तेल निकलता है। पत्तों को पहले सुखा लेने से अधिक तेल निकलता है। सूखे महीनों में अधिक तेल निकलता है।

कपूर तुलसी से आसुत तेल हलके पीले रंग का होता है। इसमें से कपूर की तेज़ गन्ध आती है। तेल के विभिन्न नमूनों में कपूर का परिमाण ६१ से ८०.५ प्रतिशत होता है। इसमें राम तुलसी (ओसिमम ग्रेटिसिमम) के तेल के समान जीवाणुनाशक गुण विद्यमान होते हैं, पर कुछ कम अंश में।

कपूर निकालना—वायु-शुष्क पत्तों को मिट्टी के बरतन में या धातु की डेगची में पानी के साथ उबालकर कपूर प्राप्त किया जाता है। इस बरतन के ऊपर उसी आकार का दूसरा बरतन औंधे मुंह रख दिया जाता है। दोनों के मुख को गीली चिकनी मिट्टी या गूंधे हुए आटे का लेप करके सन्धिबन्धन कर देते हैं जिससे भीतर के वाष्प बाहर न निकलें। ऊपर की डेगची के ऊपर गीला कपड़ा रखकर उसे ठण्डा रखा जाता है। पानी उबलना शुरू हो जाने पर आग कम कर देते हैं। भाफ़ में तेल और कपूर दोनों मिले रहते हैं। ऊपर वाली ठण्डी डेगची के

भीतरी पृष्ठ पर कपूर जम जाता है। निचली डेगची में दुबारा नये पत्ते भर दिये जाते हैं और आसवन की प्रक्रिया दोहराई जाती है। ऐसा कई बार किया जाता है। पर्याप्त मात्रा में कपूर जम जाने पर ऊपरली डेगची को उतार कर कपूर खुरच लेते हैं। इस विधि में तेल नहीं प्राप्त होता।

पत्तों को भभके में पानी के साथ उबाल कर वाष्प-आसवन से कपूर और तेल दोनों प्राप्त किये जाते है। इसके लिए विशेष प्रकार के संघनित्र (कण्डेन्सर) बनाये गए हैं जिनमे कपूर जम जाने से वाष्प के मार्ग के रुकने की आशका नहीं रहती। संघनित्र में कपूर के साथ तेल मिला हुआ प्राप्त होता है। इसे ठण्डा करके सेण्ट्रीफ़्यूगल में घुमाकर तेल अलग कर लेते है। ऊर्ध्वपातन से कपूर को शुद्ध कर लेते हैं। ऊर्ध्वपातन में लगभग पांच प्रतिशत कपूर की हानि हो जाती है। ऊर्ध्वपातन में प्राप्त शुद्ध कपूर-स्फटिकों में कपूर के पेड़ (सिनेमोमम केम्फ़ोरा) से प्राप्त कपूर सदृश विशिष्ट गन्ध और स्वाद होते हैं। दबाने पर यह पारभासी पिण्ड बन जाता है।

कपूर तुलसी के सूखे बीजों का मान निम्नलिखित है: नमी ६.४, अशोधित प्रोटीन १८.८, कार्बोहाइड्रेट २३.८, ईथर निस्सार १७.४, अशोधित तन्तु २७.० प्रतिशत। बीजों से १२.५ प्रतिशत तेल प्राप्त होता है। यह हल्के पीले रंग का होता है। रंग-रोगन में इस्तेमाल करने के लिए यह अलसी के तेल से बढ़िया होता है। इससे प्राप्त सतह चमकीली और कठोर होती है। ●


पुदीना

भारत में सब जगह घरों और बगीचों में पुदीना बोया जाता है। पश्चिम हिमालय, कश्मीर, कुमाऊं और गढ़वाल-हिमालय में समुद्र तल से १,५२५ मीटर से ३,०५० मीटर की ऊंचाइयों तक पानी वाली भूमियों में यह खुद उग आता है। गुलमर्ग के नजदीक खूब मिल जाता है।

संस्कृत में इसे पूतिहा कहते हैं जिसका अर्थ सड़ांद या दुर्गन्ध (पूति) को दूर करने वाला (हा) है। अंग्रेज़ी में इसे फ़ील्ड मिण्ट तथा कौर्न मिण्ट और आधुनिक वनस्पति शास्त्र में मेन्था आर्वेन्सिस लिन. कहते हैं। इसका पुराना नाम मेन्था विरिडिस लिन. था।

पुदीने को उगाना सरल है। बाजार से आप पुदीने की जो गड्डी लाते हैं उसकी शाखाओं को जमीन में गाड़कर सिंचाई करते रहें तो वे उग आती हैं। जड़ों के टुकड़े करके बो दें तो उग आते हैं। सरदियों में पौधा ऊपर से सूख जाता है। उसकी जड़ें जीवित रहती हैं। वसन्त में उन्हें उखाड़कर क्यारी को तैयार करके बो देना चाहिए।

पुदीने की अनेक जातियां हैं। इनके पौधे छोटे और सुगन्धित होते हैं। हरा या सूखा धनियां, अदरक, लहसुन, प्याज, हरी मिरच, अनारदाना और नमक के साथ पुदीने की पत्तियों को पीसकर चटनी बनाई जाती है। यह भोजन में रुचि बढ़ा देती है।

पुदीना भूख बढ़ाता है, भोजन को पचाता है और वायु को शान्त करता है। अजीर्ण, अपचन, पेट का दर्द, अफ़ारा और उलटियां आने पर लाभकारी होता है। आमाशय की अशक्तता, जी मिचलाना और अतिसार में दिया जाता है। यह आर्तव-

जनक, स्वेदक, वातानुलोमक, मूत्रल, विषहर और कृमिनाशक है। कफज्वर, प्रसूति ज्वर और पथरी में पुदीने को कूटकर निकाला रस एक-दो चम्मच की मात्रा में रोज पिलाया जाता है। उलटी और दस्तों में पुदीने का अर्क पिलाने से लाभ होता है।

पत्तों का फाण्ट अजीर्ण और गठिया की दवा के रूप में पिलाया जाता है।

कश्मीर के पौधे से ०.४५ प्रतिशत उड़नशील तेल प्राप्त होता है।

पहाड़ी पुदीना—पुदीने की एक किस्म पहाड़ी पुदीना है जिसे वनस्पति शास्त्र में मेन्था स्पिकाटा लिन. कहते हैं। यह उद्दीपक, पाचक और अंगग्रह-नाशक है। इसके पत्ते बुखार और खांसी में दिये जाते हैं। मुख पाक में इसके काढ़े से कुल्ले करते हैं। इसके बीजों को पानी में रात भर भिगो दें तो वे लुआबदार बन जाते हैं। पेशाब की जलन में इसे पानी के साथ खिलाने से लाभ होता है।

जापानी पुदीना—पुदीने की एक किस्म जापान से लाई गई है। इसे हिन्दी में जापानी पुदीना और अंग्रेजी में जापानीज मिण्ट कहते हैं। जम्मू में इसकी बड़े क्षेत्र में खेती की जा रही है। मार्च में लगाये गए जड़युक्त नस्सों को गरमियों में अच्छी तरह सींचने से जुलाई में फूल जाते हैं। इनसे २००-३०० क्विंटल प्रति हेक्टर फ़सल काट ली जाती है जिसमें पचास प्रतिशत पत्ते और पैंतालीस प्रतिशत डण्ठल होते हैं। इन्हीं पौधों से अक्तूबर में एक सौ क्विंटल प्रति हेक्टर कटाई हो जाती है। नियमित सिंचाई, निराई और गुड़ाई द्वारा दूसरे और तीसरे साल भी अच्छी फ़सल मिल जाती है। इसके बाद पौधे में तेल की मात्रा कम हो जाती है। तब उसे उखाड़ देना चाहिए।

उजली धूप वाले दिन सुबह ओस उड़ जाने पर फ़सल काटनी चाहिए। काटे गये पौधों की छोटी गड्डियां बनाकर छाया में वहां सुखायें जहां भली-भांति हवा का आवागमन हो। धूप में नहीं सुखाना चाहिए।

पौधे को वाष्प-आसवन से एक उड़नशील तेल प्राप्त होता है जिसे व्यापार में जापानी मिण्ट ऑयल (जापानी पुदीने का तेल) या जापानी पिपरमिण्ट तेल कहते हैं। पत्तों और पुष्पित शिखरों से सर्वाधिक तेल निकलता है। एक परीक्षण में सूखे पत्तों में से दो प्रतिशत तेल निकाला गया था। इसमें पचपन प्रतिशत मेन्थोल होता है।

मंजनों, टूथ पेस्टों, मुख प्रक्षालकों और जुलाब की दवाओं में मेन्थोल डाला जाता है।

पुदीने की विभिन्न जातियों के पत्ते पाचक हैं। पित्त और आमाशय के विकारों में उनका उपयोग किया जाता है। खाद्य पदार्थों और शराब को सुवासित करने के लिए ये काम आते हैं।

असली पिपरमिण्ट तेल तो पिपरमिण्ट के पौधे से निकाला जाता है जिसे लेटिन में मेन्था पिपेरिटा लिन. कहते हैं।

पिपरमिण्ट—पिपरमिण्ट भी पुदीने की जाति का छोटा पौधा है जिसे वनस्पति शास्त्र में मेन्था पिपेरिटा लिन. कहते हैं।

पिपरमिण्ट के सूखे पत्ते और पुष्पित शिखर अमरीकी भेषज संहिता (फ़ार्माकोपिया) में मान्य हैं।

यह क्षुप सुगन्धित, उद्दीपक, क्षुधावर्धक और वातानुलोमक है। जी मिचलाना, उलटियां आना और अफारे को दूर करने के लिए उपयोगी है। सिरदर्द में पत्तों को पीसकर लेप करते हैं। पेट दर्द और दस्तों में इसका गरम फाण्ट पिलाते हैं।

इस क्षुप में से एक सुगन्धित तेल निकाला जाता है जो ०.५-१.५ तिशत के परिमाण में प्राप्त होता है। यह तीव्र गन्ध और

तीक्ष्ण स्वाद वाला; नीरंग, हलका पीला हरिताभ पीला द्रव है। इसे मुख में रखकर हवा खींचने से ठण्डा मालूम पडता है। पुराना तेल गहरे रंग का और चिपचिपा हो जाता है। इस तेल में पचास से पचपन प्रतिशत मेन्थोल होता है।

पिपरमिण्ट तेल अत्यधिक लोकप्रिय और अत्यधिक उपयोग में आने वाले उड़नशील तेलों में से एक है। फ़ार्मेसी उद्योग में, दांत की औषधियों, मुखधावनों, खांसी की दवाओं, चूसने की मीठी गोलियों, मिठाइयों, शराबों और साबुनों को सुवासित करने के काम आता है। सिरदर्द, दांतदर्द, गठिया और वात-नाड़ियों के दर्द में यह वेदनाहर के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

तेल निकालने के बाद बचा हुआ फोक पशुओं को खिलाया जा सकता है। पिपरमिण्ट तेल में ५६ प्रतिशत मेन्थोल होता है। फ़सल काटने के समय पर मेन्थोल के परिमाण पर बहुत प्रभाव पड़ता है। फ़सल काटने में दस-पन्द्रह दिन देर-सवेर हो जाने से मेंथोल के परिमाण में तीस प्रतिशत की गिरावट हो जाती है। मेन्थोल को हिन्दी मे पुदीने का सत और पुदीने के फूल कहते हैं। पिपरमिण्ट के उड़नशील तेल और मेन्थोल (पुदीने के सत) दोनों का दवाओं में उपयोग किया जाता है। ये दोनों प्रति-पूयिक हैं। दांत के दर्द में रुई के फाये को तेल में भिगोकर खोल में भरने से वेदना शान्त होती है। पिपरमिण्ट का तेल और सत त्वचा पर लगाने से उस जगह को सुन्न कर देते हैं। त्वचा के रोगों मे लगाई जाने वाली मरहमों में इनका प्रयोग किया जाता है। श्वास-सस्थान के कष्टों में और पाचन सस्थान के विकारों में इन्हें दिया जाता है। गले के रोगों और खांसी में मेन्थोल से बनी चोष्य टिकियां चूसने से लाभ होता है। एक ग्राम मेन्थोल और दो ग्राम कपूर को मिलाने से द्रव बन जाता

है। इसे तेल में मिलाकर मालिश करने से दर्द शान्त होता है। वमन में, विशेषकर गर्भावस्था में होने वाली उलटियों में, बदहज़मी के कारण बार-बार आने वाले दस्तों में और हैज़े में मेन्थोल और कपूर से बनाये द्रव की दो से पांच बूंदें चीनी के ऊपर डालकर खिलाते है। •

नौ जातियां

चरक के मत में तुलसी, सुमुख, कुठेरक, अर्जक, गण्डीर, कालमालक, पर्णास, क्षवक और फणिज्झक—ये नौ अलग-अलग जातियों के पौधे हैं। परन्तु टीकाकार और निघण्टुकार इनका वर्णन करते हुए इनमें से कुछ को एक-दूसरे का पर्यायवाची शब्द लिख देते हैं। यदि चरक को प्रामाणिक माना जाय तो इन संग्रहकारों और टीकाकारों के मन्तव्यों की संगति नहीं लगती। भावमिश्र, कैयदेव आदि ने इनके पर्यायों और गुणों को बताने वाले जो श्लोक लिखे हैं उन्हें पढ़कर पाठक भ्रम में पड़ जाता है। निघण्टुकारों के श्लोकों की युक्तिसंगत व्याख्या करना सम्भव न होने से इस पुस्तक में उनको स्थान नहीं दिया गया। मुख्य जातियों का हमने पहले पृष्ठों में वर्णन कर दिया है। इस प्रकरण में उन जातियों का वर्णन किया जा रहा है जिनकी इदन्तता निश्चय करना सम्भव नहीं।

सुमुख—हरा सुमुख रुचिकर और सुगन्ध देने वाला होता है। यह अतिकटु नहीं होता। दोषों को बढ़ाता है। सुमुख खाने के बाद दूध नहीं पीना चाहिए, इससे त्वचा के रोग होने का डर रहता है।

कुठेरक—कुठेरक के पत्तों का साग खाया जाता है। यह भारी और सूखा होता है। पेट में हवा पैदा करके गुड़गुड़ शब्द करता हुआ पचता है। मधुर, वीर्य में शीत और मल को लाने वाला है। चरक के मत में इसे उबालकर पानी फेंक देना

चाहिए और घी आदि स्नेह खूब डालकर भून लेना चाहिए। पत्तों को दही और सेन्धा नमक के साथ चटनी की तरह पीसकर उरुस्तम्भ में लेप करते हैं। छाछ में पीसकर लेप करने से खुजली और दाद नष्ट हो जाते हैं। गोविन्ददास कहते हैं कि पत्तों को छाछ या कांजी में पीसकर लेप करने से पुरानी खाज और वे दाद भी ठीक हो जाते हैं जिनकी जड़ें बहुत गहरी चली गई हों।

पर्णास—पर्णास, गिलोय, सोंठ, भारंगी और छोटी कटेरी के काढ़े में पिप्पलीचूर्ण को एक रत्ती भर डालकर सेवन करने से खांसी और दमा जल्दी ही ठीक हो जाता है।

फणिज्झक—हथियार से कट जाने पर, रगड़ लग जाने पर तथा चुभी हुई चीज को निकालने पर बने हुए जख्म में और भूण्ड के डंक को निकालने के बाद बने छिद्र में फणिज्झक का रस भर देने से विष नहीं चढ़ता और जख्म विषैला नहीं होता क्योंकि यह उस स्थान के कृमियों को मार देता है।

नौ जातियों के उपयोग—चरक की लिखी तुलसी की नवों जाति कटु हैं। ये सब एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हो सकती हैं और सब जातियों के अभाव में तुलसी का प्रयोग किया जा सकता है।

तुलसी, काली तुलसी, फणिज्झक, अर्जक, सुमुख, कालमाल और क्षवक को सुश्रुत ने सुरसादिगण में पढ़ा है। ये पौधे कफ़नाशक और जुकाम, खांसी, दमा तथा अरुचि को दूर करने वाले हैं। कृमिनाशक हैं और व्रण को शुद्ध करते हैं।

अर्जक को छोड़कर तुलसी की आठों जातियों में से किसी एक, दो या सबके रस से आटे को गून्ध लें। जिनके पेट में कीड़े होते हैं, उन्हें इस आटे की पूड़ियां तलकर खिलाते हैं। रोगी से आठों पौधों को मंगवा कर वैद्य देख-भाल कर ले कि द्रव ठीक आये हैं। इनके टुकड़े-टुकड़े करके पानी में धो डालें। अच्छी

प्रकार धोई हुई हाण्डी में इन्हें रखकर आधा पानी मिला हुआ गोमूत्र डालें और आग पर रखकर पकाएं। लकड़ी की कड़छी से निरन्तर हिलाते रहें। पानी जब काफ़ी सूख जाय और ओषधियों का रस निकल आये तब कुछ ठण्डा होने पर नीचे उतार लें और कपड़े से छान लें। एनिमा की पिचकारी से या एनिमा देने वाले बरतन से इसे रोगी की गुदा में छोड़ दें। कुछ देर तक इसे अन्दर रोके रखकर निकाल दें। इसे आस्थापन वस्ति कहते हैं। इससे आंतों के कीड़े मर जाते हैं।

अरुचिनाशक और भूख चमकाने वाले होने से आठों पौधे चटनियां बनाने के काम आते हैं। थोड़ी मात्राओं में इनका समावेश निर्बल पाचन-शक्ति वालों को बहुत लाभ पहुंचाता है। परन्तु जिनके भोजनों में ये चटनियां बहुत अधिक परिणाम में रहती हैं उनका पित्त प्रकुपित हो जाता है और खून खराब हो जाता है जिससे किन्हीं मार्गों से रक्तस्राव होने लग सकता है। इस रोग को रक्तपित्त कहते हैं। इससे बचने के लिए, इसलिए, इन चटनियों को अधिक नहीं खाना चाहिए।

नवों पौधों को समान परिमाण में लेकर कूट लें और गोमूत्र में पकाकर कपड़े में छान लें। इसमें शहद, तेल और नमक मिलाकर कफ के रोगी को विधिपूर्वक कोसी-कोसी वस्ति देते हैं।

सिर में संचित दोषों को निकालने के लिए चरक ने अर्जक को छोड़कर शेष आठों पौधों का उपयोग किया है।

बच्चों के नेत्रशूल, स्तब्धनेत्र तथा अन्य नेत्रों में कश्यप ने फणिज्झक, तुलसी, कालमालक और कुठेरक के पत्तों का प्रयोग

करने की सिफ़ारिश की है। पिल्लिका, उपदेह आदि नेत्र विकारों में आंखों में आंजने के लिए तुलसी, कालमालक, कुठेरक आदि के साथ एक बत्ती बनाई जाती है। कुकूणक में तुलसी और फणिज्झक के रस को कुछ अन्य द्रव्यों के साथ आंख में दो-तीन दिन डालते हैं।●